ISSN-0971-8397

योजना

विशेषांक

आज़ादी का अमृत महोत्सव

अगस्त 2022 विकास को समर्पित मासिक ₹ 30

साहित्य और आज़ादी

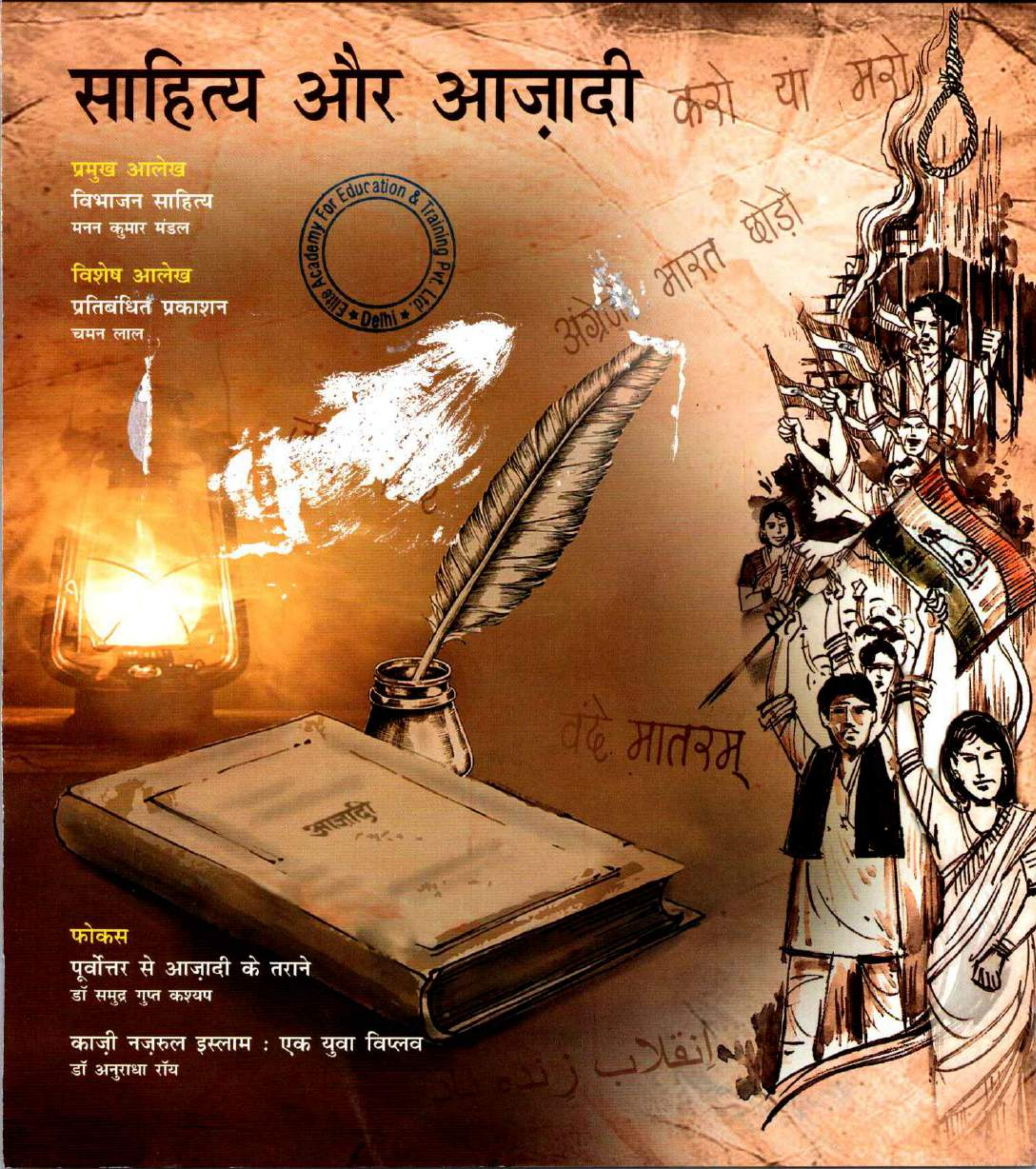

प्रमुख आलेख
विभाजन साहित्य
मनन कुमार मंडल

विशेष आलेख
प्रतिबंधित प्रकाशन
चमन लाल

Elite Academy For Education & Training Pvt. Ltd. Delhi

फोकस
पूर्वोत्तर से आज़ादी के तराने
डॉ समुद्र गुप्त कश्यप

काज़ी नज़रुल इस्लाम : एक युवा विप्लव
डॉ अनुराधा रॉय

विशेषांक
योजना
वर्ष : 66
अंक : 08
अगस्त 2022
श्रावण-भाद्रपद, शक संवत् 1944
मूल्य : ₹ 30
पृष्ठ : 60
वेबसाइट www.publicationsdivision.nic.in

वरिष्ठ संपादक : कुलश्रेष्ठ कमल
संपादक : डॉ ममता रानी

संपादकीय कार्यालय
648, सूचना भवन, सीजीओ परिसर,
लोदी रोड, नयी दिल्ली-110 003

संयुक्त निदेशक (उत्पादन) : डीकेसी हृदयनाथ

योजना का लक्ष्य देश के आर्थिक विकास से संबंधित मुद्दों का सरकारी नीतियों के व्यापक संदर्भ में गहराई से विश्लेषण कर इन पर विमर्श के लिए एक जीवंत मंच उपलब्ध कराना है।

योजना में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने और व्यक्तिगत हैं। ज़रूरी नहीं कि ये लेखक भारत सरकार के जिन मंत्रालयों, विभागों अथवा संगठनों से संबद्ध हैं, उनका भी यही दृष्टिकोण हो।

योजना में प्रकाशित विज्ञापनों की विषयवस्तु के लिए योजना उत्तरदायी नहीं हैं।

योजना में प्रकाशित आलेखों में प्रयुक्त मानचित्र व प्रतीक आधिकारिक नहीं है, बल्कि सांकेतिक हैं। ये मानचित्र या प्रतीक किसी भी देश का आधिकारिक प्रतिनिधित्व नहीं करते हैं।

योजना लेखकों द्वारा आलेखों के साथ अपने विश्वसनीय स्रोतों से एकत्र कर उपलब्ध कराए गए आंकड़ों/तालिकाओं/इन्फोग्राफिक्स के सम्बन्ध में उत्तरदायी नहीं है। योजना किसी भी लेख में केस स्टडी के रूप में प्रस्तुत किसी भी ब्रांड या निजी संस्थाओं का समर्थन या प्रचार नहीं करती है।

योजना घर मंगाने, शुल्क में छूट के साथ दरों व प्लान की विस्तृत जानकारी के लिए **पृष्ठ-58** पर देखें।

योजना की सदस्यता का शुल्क जमा करने के बाद पत्रिका प्राप्त होने में कम से कम 8 सप्ताह का समय लगता है। इस अवधि के समाप्त होने के बाद ही योजना प्राप्त न होने की शिकायत करें।

योजना न मिलने की शिकायत या पुराने अंक मंगाने के लिए नीचे दिए गए ई-मेल पर लिखें -
pdjucir@gmail.com
या संपर्क करें-
दूरभाष : 011-24367453
(सोमवार से शुक्रवार सभी कार्य दिवस पर प्रातः 9:30 बजे से शाम 6:00 बजे तक)

योजना की सदस्यता की जानकारी लेने तथा विज्ञापन छपवाने के लिए संपर्क करें-
अभिषेक चतुर्वेदी, संपादक, पत्रिका एकांश
प्रकाशन विभाग, कमरा सं. 779, सातवां तल,
सूचना भवन, सीजीओ परिसर, लोदी रोड,
नयी दिल्ली-110003

@DPD_India
@publicationsdivision
@dpd_india

इस अंक में

प्रमुख आलेख
विभाजन साहित्य
मनन कुमार मंडल 9

विशेष आलेख
प्रतिबंधित प्रकाशन
चमन लाल 13

स्वतंत्रता-संघर्ष के दौर में बांग्ला रंगमंच और सिनेमा
अमिताव नाग 17

मध्य भारत में स्वतंत्रता संग्राम
डॉ सुशील त्रिवेदी 21

फोकस
पूर्वोत्तर से आज़ादी के तराने
डॉ समुद्र गुप्त कश्यप 25

काज़ी नज़रुल इस्लाम : एक युवा विप्लव
डॉ अनुराधा रॉय 29

हिंदी की साहित्य-चेतना
आलोक श्रीवास्तव 33

स्वाधीनता आन्दोलन और राष्ट्रवाद
देवेन्द्र चौबे 37

संस्कृत सेवियों का स्वतंत्रता आंदोलन में योगदान
डॉ शंकरलाल शास्त्री 43

उर्दू अदब की भूमिका
डॉ नरेश 47

समकालीन स्त्री-लेखन
डॉ गरिमा श्रीवास्तव 49

गुजराती साहित्य पर गाँधी का प्रभाव
डॉ ध्वनिल पारेख 53

नियमित स्तंभ
क्या आप जानते हैं? : भारतीय ध्वज संहिता 2002 की मुख्य बातें 55
पुस्तक चर्चा
भारत-विभाजन की कहानी 57

आगामी अंक : जम्मू-कश्मीर तथा लद्दाख

प्रकाशन विभाग के देश भर में स्थित विक्रय केंद्रों की सूची के लिए देखें पृ.सं. 28

हिंदी, असमिया, बांग्ला, अँग्रेज़ी, गुजराती, कन्नड़, मलयालम, तमिल, तेलुगु, मराठी, ओडिया, पंजाबी तथा उर्दू में एक साथ प्रकाशित।

आपकी राय

Elite Academy For Education & Training Pvt. Ltd. ★ Delhi ★

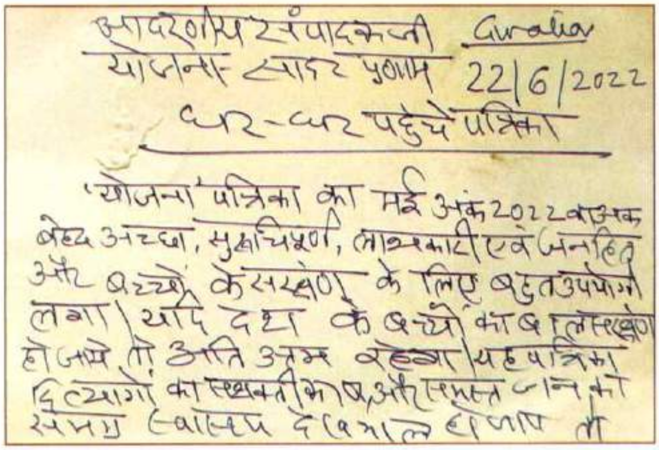
आदरणीय संपादक जी Gwalior
योजना सादर प्रणाम 22/6/2022
घर-घर पहुंचे पत्रिका
'योजना' पत्रिका का मई अंक 2022

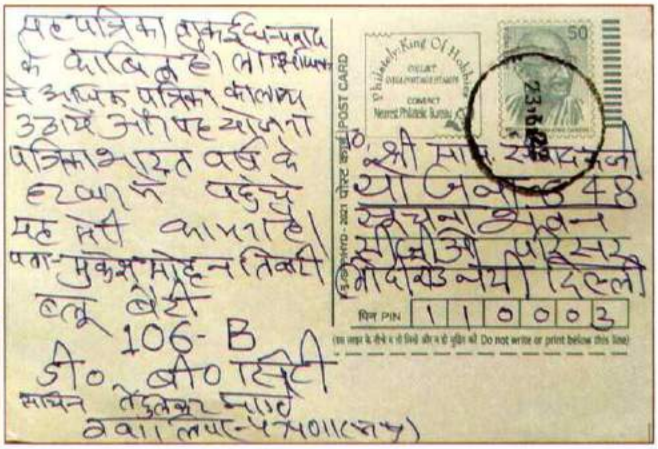
पता- मुकेश मोहन तिवारी
106-B
श्री संपादक जी
योजना 648
सूचना भवन
सीजीओ परिसर
लोदी रोड नयी दिल्ली
पिन PIN 1 1 0 0 0 3

प्रौद्योगिकियों का विस्तार

'योजना' पत्रिका का जून 2022 का अंक प्रौद्योगिकियों पर केन्द्रित था। वर्तमान युग प्रौद्योगिकी का है। बिना इसके विकास की आशा नहीं की जा सकती। जून अंक में विभिन्न क्षेत्रों में प्रयोग होने वाली तकनीकों की चर्चा की गई थी। जहाँ डिजिटल समावेशन से समाज के सभी वर्गों तक डिजिटल व अन्य तकनीकें पहुँच रही हैं, वहीं डीप स्टार्ट इको-सिस्टम के द्वारा नवीन अनुसंधानों को अनुकूल वातावरण मिल रहा है। कृत्रिम मेधा के द्वारा नवीन उपलब्धियाँ हासिल की जा रही हैं। बैंकिंग व शिक्षा के क्षेत्र में नवीन तकनीकों के अनुप्रयोग से इन क्षेत्रों में समावेशन में मदद मिली है एवं दूर दराज के क्षेत्रों व कमज़ोर समूहों तक भी उपरोक्त सेवाओं की पहुँच सुनिश्चित की जा रही है।

स्वास्थ्य सेवाओं में भी तकनीकी व सामाजिक पहल के द्वारा इन सेवाओं को आम जनों तक पहुँचाया गया है। इसमें विभिन्न सरकारी योजनाओं ने भी काफी मदद की है। योग के माध्यम से पारंपरिक चिकित्सा व व्यायाम की प्राचीन शैली की तरफ पहल की गई है। योग स्वस्थ रहने की प्राचीन शैली रही है। इसका भी अपना बड़ा तकनीकी महत्व है। मूर हेन योग चटाई के बारे में जानकारी दिलचस्प लगी। ये भारत की पारंपरिक जनजातीय तकनीक है। इसे बढ़ावा मिलना चाहिए। आगामी अंक का इंतजार रहेगा।

– नितेश कुमार
गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश

जनजातीय समूह

'योजना' पत्रिका का जुलाई 2022 का अंक मेरे लिए बहुत सदुपयोगी व ज्ञानप्रद रहा। जुलाई माह के इस अंक में ऐसे मुद्दों की चर्चा की गई है जिसके बारे में सामान्यत: हम अनभिज्ञ रहते हैं या ये कहें कि हम अपने जीवन में इतना ज्यादा व्यस्त हो जाते हैं कि हमारा ध्यान ऐसे समुदाय की तरफ आकर्षित ही नहीं हो पाता। मैं जिस पृष्ठभूमि से आता हूँ वहाँ पर कभी भी इस समुदाय के बारे में कोई जानकारी प्राप्त ही नहीं हो पाती है या हम नजरंदाज कर देते हैं। हम मानकर चलते हैं कि वो हमारे देश के हैं ही नहीं। इनकी विशिष्टता को हम नजरंदाज़ करते जाते हैं क्योंकि हम तथाकथित आधुनिक समाज के प्रतिस्पर्धी लोग हैं और हमारे साथ कदम से कदम मिला कर नहीं चल रहे होते हैं तो हम उनको अपना समझ ही नहीं पाते हैं। सदियों से वनों और पर्वतीय क्षेत्रों में रहने के कारण जनजातीय समूह विकास की सामान्य प्रक्रिया के लाभों से वंचित होते रहें हैं और साथ ही सामाजिक प्रतिष्ठा के अभाव में जनजातीय समूह हमेशा ही पीछे रहे हैं। 'योजना' पत्रिका के इस अंक के लिए मैं योजना की पूरी टीम को और साथ ही ऐसे बुद्धजीवियों को भी धन्यवाद देना चाहूँगा। जिन्होंने ऐसे विषयों पर हमारा ध्यान आकर्षित किया और अपने अनुभवों से हम सब को अभिभूत किया।

– शिवम मिश्रा
पट्टी प्रतापगढ़, उत्तर प्रदेश

आपकी राय का पृष्ठ पाठकों के विचार और उनकी टिप्पणियाँ 'योजना' टीम से साझा करने के लिए ही है। अपने पत्र हमें ईमेल करें–

yojanahindi-dpd@gov.in

पर या लिखें - वरिष्ठ संपादक, 648, सूचना भवन, सीजीओ परिसर, लोदी रोड, नयी दिल्ली-110 003

Elite Academy For Education & Training Pvt. Ltd. ★ Delhi ★

आज की चर्चित प्रौद्योगिकियाँ

हर दिन बदलते तकनीकी दुनिया और परिवेश में निरंतर ही हर व्यक्ति उससे जुड़ते जा रहा है। कई मायने में इसके अपने फायदे हैं। जहाँ आज की भागम-भाग जिंदगी में वक्त को देखते हुए तकनीकी को महत्व दिया जा रहा है वहीं इसे अपनाकर अपने आज और कल को और सरल और सुगम बनाया जा रहा है। इसमें कई आविष्कार अहम भूमिका निभा रहे हैं और भविष्य में यही नवाचार अपनी छाप से हर सेक्टर को बलबूते चला रहे होंगे। 'योजना' के जून अंक में हमें यही सब जानने का मौका मिला और विस्तृत रूप से समझ विकसित हुई। जैसे ब्लॉकचेन द्वारा लेन-देन की सुरक्षा प्रणाली चाहे भले ही वो गैर बैंकिंग सिस्टम हो और नॉन फंजीबल टोकन प्रणाली द्वारा किसी को अद्वितीय या यूनीक चीजों के बारे में जैसे आप भले भौतिक चीजों से संबंधित कोई भी चीज़ खरीदें और उसका डिजिटल प्रमाण पत्र जारी किया जाए और ये स्पष्ट होगा कि उसके मालिक सिर्फ आप हैं तो कैसा अनुभव होगा। उसी क्रम में मेटा वर्स है जिसमें आयोजन, कारोबार, मनोरंजन, बैठक इत्यादि। अगर ये सभी इंटरनेट द्वारा एक पथ पर डिजिटल तरीके से होना संभव होने को है। इस समय की चर्चित आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस है, जो जल्द ही इंसान की तरह सभी कामों को कर सकने में सक्षम होगी।

जो मानव जीवन को आसान और सुगम बनाने में अहम भूमिका निभायेगी। इस अंक से हाल में हुए तकनीकी आविष्कारों और नई प्रणालियों के बारे में अच्छी गहनता जानने को मिली। ये कहना गलत नहीं होगा कि जल्द ही तकनीकी क्षेत्र मानव जीवन के जीने की कला को बिल्कुल बदल देगा।

– **प्रमोद कुमार साहनी**
गोरखपुर, उत्तर प्रदेश

भारत में जनजातियाँ

'योजना' पत्रिका का जुलाई अंक भारत की 'जनजातियों' के विशेष संदर्भ में प्रकाशित किया गया है। भारत विविध संस्कृति वाला देश रहा है जिसमें जनजातियों की अपनी अपनी समृद्ध संस्कृतियाँ मौजूद हैं। अंक में जनजातियों के समग्र विकास हेतु संवैधानिक व्यवस्थाओं की सटीक जानकारी दी गई है साथ ही कई राज्यों की जनजातियों के बारे में विशेष जानकारियाँ भी दी गई हैं। इस प्रकार यह अंक पाठकों को भारत की जनजातियों की समृद्ध संस्कृतियों को जानने समझने में विशेष सहायता करेगा। पत्रिका परिवार को इस अंक हेतु विशेष आभार।

– **मनीष रमन**
अलवर, राजस्थान

जनजातियों का उत्थान

योजना का जुलाई 2022 का अंक काफी जागरुकतावर्धक व ज्ञानास्पद रहा है। हमारे समाज की सोच जो जनजातीय समुदाय (जिसमें 700 से अधिक समुदाय है) को लेके बनी हुई है इस अंक को पढ़ने के बाद उससे काफी हद तक निजात पाया जा सकता है। ये वो समाज है जिसकी अन्य समुदाय के लोगों द्वारा काफी उपेक्षा हुई है जिसका नतीजा आज हमारे सामने हैं। हालांकि ऐसे तमाम शिकायतों से निपटने के लिए राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग (अनुच्छेद 338ए) ने www.ncstgrams.gov.in जैसी वेबसाइट चालू की है और हमारी सरकार द्वारा अनुसूचित जनजाति के उत्थान हेतु काफी कल्याणकारी योजनाएं चलाई जा रही हैं जैसे- अनुच्छेद 275 (1) के अंतर्गत सहायता अनुदान, छात्रवृत्ति योजना, पीएम जनजातीय विकास मिशन योजना आदि। आज हमारा देश आजादी का अमृत महोत्सव मना रहा है इसी क्रम में बिरसा मुंडा, जात्रा, भगत सिंह एवं रानी गाईदिनल्यू का योगदान हमारी आजादी में बहुत रहा है तथा रानी गाईदिनल्यू को उम्र कैद होना व नाना जगताप का बीजागढ़ में बलिदान जनजातीय समुदाय का देश प्रेम प्रदर्शित करती हैं। मुझे जनजातीय समुदाय के एक गीत की कुछ पंक्तियां याद आ रही हैं- "दिया मांगे बाती, बाती मांगे तेल। सुराज लेबो अंगरेज, कतका देबे जेल। ये गीत 1920 के बाद महात्मा गाँधी का साथ देने के लिए गाया गया था। विशेष रूप से बात करें तो हमारे प्रधानमंत्री जी का 'माँ-अनमोल स्नेह' बेहद भावुक करने वाला रहा। मैं घर से 70 कि.मी. दूर रहकर पढ़ाई कर रहा हूँ। आलेख पढ़के रात के 2 बजे अचानक माँ की याद आ रही है। आगामी अंक 'साहित्य और आजादी' का बेहद उत्सुकता से इंतजार व इस अंक 'भारत में जनजातियों' की प्रस्तुति के लिए योजना टीम का बहुत-बहुत धन्यवाद।

– **मोहित कुमार**
खेरा, अछल्दा, औरैया (उत्तर प्रदेश)

समावेशी विकास

जुलाई अंक 'भारत में जनजातियाँ' के सभी अध्यायों में भारतीय जनजातियों को जानने का अवसर मिला तथा उनका भारतीय समाज में योगदान व भारतीय स्वतंत्रता की लड़ाई में महत्वपूर्ण व्यक्तित्व के बारे में जानने के लिए 'जनजातीय गौरव दिवस' (15 नवंबर) को मनाने का भारतीय सरकार का निर्णय एक अहम कदम है। इस कदम से भारतीय समाज में अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजातियों के बारे में अन्य समुदायों को जानने का अवसर प्राप्त होगा। इस महत्वपूर्ण कदम के लिए सरकार और इस अंक के लिए योजना टीम बधाई के पात्र हैं। धन्यवाद!

– **अफ़ज़ल हुसैन**
रामपुर, उत्तर प्रदेश

संपादकीय

शब्दों की ताक़त

बात उस समय की है, जब आज़ादी के संघर्ष के दौरान अँग्रेज़ी राज ने अनेकों स्वतंत्रता सेनानियों को सलाखों के पीछे बन्द कर दिया था। इन्हीं स्वतंत्रता सेनानियों में से एक ने जेल से अपने घर एक संदेश भेजा। जेल के अधिकारियों ने इस संदेश को राजद्रोह और अँग्रेज़ी राज के खिलाफ साज़िश बताया। यह सन्देश कुछ इस तरह था, *'इस-राज के तार ढीले कर दो।'* इसका मतलब यह लगाया गया कि इसमें अँग्रेज़ी राज के तंत्र को ढीला करने की बात कही जा रही है। अधिकारियों ने इस स्वतंत्रता सेनानी को तलब कर इस संदेश के बारे में पूछताछ की। स्वतंत्रता सेनानी ने विनम्रता से कहा कि उन्हें गलत समझा गया है। वह सिर्फ अपने परिवार को यह संदेश भेजना चाहते थे कि उस वाद्य यंत्र के तार को ढीला कर दिया जाए, जिसे वह गिरफ्तारी वक्त छोड़ आए थे। दरअसल, गिरफ्तारी के समय वे सितार और सारंगीनुमा वाद्ययंत्र 'इसराज' बजा रहे थे। इस घटना से शब्दों की ताक़त का अंदाज़ा लगाया जा सकता है, जिसने ज़ुल्मी हुकूमत की जड़ें हिला दीं।

शब्दों से हमें ऐसी चीज़ों के बारे में 'कल्पना' करने की ताक़त मिलती है जो सामान्य समझ से परे हैं। शब्द हमें घटनाओं, गतिविधियों आदि के बारे में **'लिखने और उन्हें दस्तावेज़ के तौर पर सुरक्षित रखने'** का अवसर उपलब्ध कराते हैं, ताकि ये दस्तावेज़ आने वाली पीढ़ियों के लिए मूल्यवान ऐतिहासिक रिकॉर्ड के तौर पर काम कर सकें। ये हमें गलत के खिलाफ **'आवाज़ उठाने और कार्रवाई करने'** का हौसला भी देते हैं। हम इन शब्दों की यात्रा को याद करते हुए यह बताने की कोशिश कर रहे हैं कि स्वतंत्रता संग्राम में इनकी क्या भूमिका रही।

अँग्रेज़ी शासन के अत्याचार के खिलाफ संघर्ष और आज़ादी का लक्ष्य हासिल करने के प्रयासों के अन्तर्गत, शब्दों के साथ 'कल्पना-शक्ति' के तालमेल से 'आनंदमठ' जैसे उपन्यास का सृजन हुआ, जिससे स्वतंत्रता आंदोलन को तेज़ करने में मदद मिली। शब्दों ने हमें गीत, कविता और नारे भी दिए, जो जनता के बीच काफी लोकप्रिय हुए और अत्याचारी शासन के खिलाफ विरोध को आवाज़ मिली।

इन शब्दों ने मातृभूमि के लिए एकता और त्याग की भावना को मज़बूती प्रदान की। उदाहरण के लिए, इन पंक्तियों पर गौर करें, 'ई-ही तोमार दान, / तोमार होके जीवन-धारण, / तोमार होके प्राण।' डॉ अनुराधा के लेख में उद्धृत की गई काज़ी नज़रूल इस्लाम की इन पंक्तियों ने भी लोगों को एकजुट किया, "कौन पूछ रहा है कि वे हिंदू हैं या मुसलमान? / ओ मांझी, कृपा करके उन्हें बताओ, / जो डूब रहे हैं वे इंसान हैं, मेरी माँ के बच्चे!"

दरअसल, वह दौर बेहद उथल-पुथल वाला था। इस वजह से यह कहा जाता है कि उस समय का सच, कहानियों से भी ज़्यादा विचित्र था। लिहाज़ा, **'लिखने और दस्तावेज़ के तौर पर रिकॉर्ड रखने'** की अहमियत को महसूस किया गया। अखबारों, पर्चों, किताबों और अन्य माध्यमों के ज़रिये इसे अंजाम दिया गया। सभी भारतीय भाषाओं और अँग्रेज़ी भाषा में छपी सामग्री ने अँग्रेज़ी राज के अत्याचारों को बेनकाब कर दिया और राष्ट्र में सामूहिक तौर पर जागरुकता फैलाने का काम किया। विडंबना यह है कि इन लेखों में देश-विभाजन से जुड़े दर्द और आपदा की भी कहानियाँ दर्ज हैं, जिन्हें हमारे अपने लोगों ने ही अंजाम दिया। उदाहरण के लिए, हमें उस दौरान लाशों और खून से भरे कुएँ का मंज़र भी देखने को मिला। हमारे समाज में फैले नफरत के ज़हर की वजह से कई वीभत्स घटनाएँ हुईं। ये घटनाएँ हमें अभी भी यह सोचने को मजबूर करती हैं कि गलती कहाँ हुई थी। इन तमाम घटनाओं से उपजा 'विभाजन साहित्य'।

जब ये शब्द 'अभिव्यक्ति और अभिनय' के लिए इस्तेमाल किए जाते थे, तो वे बेहद रचनात्मक, हाज़िर जवाब और कलात्मक हुआ करते थे। इस संदर्भ में, अँग्रेज़ी शासन के एक पुलिसकर्मी का उदाहरण दिया जा सकता है, जिसका काम देशभक्ति के विषय पर आधारित एक ही नाटक को बार-बार देखना था, ताकि अभिनेताओं को राजद्रोह के मामले में रंगे हाथ पकड़ा जा सके। लेकिन, वह इसके लिए कोई सबूत नहीं ढूंढ पाया। हालांकि, अभिनेता ने किसी दिन अपने लिखे हुए डायलॉग में खुद से कुछ वाक्य जोड़ लिए और इस तरह पूरा हॉल देशभक्ति के माहौल में डूब गया और नाटक के मायने बदल गए।

योजना का यह अंक उन शब्दों को समर्पित है, जिन्होंने आज़ादी से पहले के दौर में एक सामूहिक लक्ष्य के लिए पुरुषों और महिलाओं को प्रेरित किया। ऐसे शब्द जिनसे हमें उस दौर के लोगों के हरसंभव प्रयासों और कष्टों के बारे में पढ़ने और समझने का मौका मिला। इन शब्दों ने ऐसे तमाम मंज़र देखे हैं। यह इन शब्दों के प्रति उद्‌गार व्यक्त करने का एक छोटा-सा प्रयास है। ■

Elite Academy For Education & Training Pvt. Ltd. ★ Delhi ★

विभाजन साहित्य

मनन कुमार मंडल

भारतीय साहित्य की बहुभाषी व्यवस्था हमें देश और सीमांत के बहुआयामी इतिहास को समायोजित करने के लिए विवश करती है। औपनिवेशिक उद्यम और राष्ट्रवाद के जटिल प्रक्षेप पथ ने समकालीन आधुनिक भारतीय साहित्य का मार्ग प्रशस्त किया है जहाँ इतिहास के उपाख्यानों को साहित्यिक अभिव्यक्तियों में जोड़ा जाता है। स्वतंत्र भारत के उदय ने भारतीय लेखकों और कथाओं को कई तरह से प्रेरित किया है। पिछली दो शताब्दियों में भारतीय राष्ट्र-स्थिति के राजनीतिक लेखन के पीछे काम करने वाले धार्मिक और सामाजिक विभाजन, दरार और उभयभाविता ने आधुनिक भारतीय साहित्य को आकार दिया था। भारतीय उपमहाद्वीप के विभाजन का पीढ़ियों पर विनाशकारी और व्यापक प्रभाव पड़ा है। इसने 20वीं सदी की एक जलसंभर घटना की तरह कई भारतीय भाषाओं की साहित्यिक विधाओं को बदल दिया; इसने जिस दुश्मनी को उजागर किया, वह द्वेष दशकों बाद दशकों तक चला। विभाजन उपाख्यानों के प्रतिबिंब के साथ निर्मित साहित्य को विभाजन साहित्य के रूप - 20वीं शताब्दी की एक नई साहित्यिक शैली में वर्गीकृत किया गया है जो सर्वनाश साहित्य, शरणार्थी साहित्य आदि के समानांतर है।

दुनिया के विभिन्न हिस्सों में विभाजन के बारे में साहित्यिक प्रतिबिंबों की लक्षणात्मक प्रकृति को देखा जा सकता है जहाँ उत्तर-औपनिवेशिक दुनिया में विभाजन के मूल भाव की केंद्रीयता, प्रमुख विशेषताओं में से एक है। 20वीं सदी में दुनिया ने कई विभाजन देखे हैं जैसे इजराइल-फिलिस्तीन, आयरलैंड-इंग्लैंड, जर्मनी का विभाजन (और निश्चित रूप से इसका पुनर्मिलन), पूर्व यूगोस्लाविया का विभाजन, कोरिया और वियतनाम का विभाजन आदि। प्रत्येक मामले में, क्षेत्रीय विभाजन प्रस्ताव ने दोनों पक्षों के लोगों के लिए गंभीर समस्याएँ पैदा की हैं, और लंबे समय तक मानव जीवन को अस्थिर किया है। इन कष्टों के मानवीय पहलू का विभिन्न भाषाओं के साहित्यिक संग्रह में उल्लेख किया गया है। हालाँकि, प्रत्येक नई उभरी सीमा का अपना स्थानिक चरित्र और सांस्कृतिक विरासत है, इसलिए साहित्यिक प्रतिबिंब कई गुना है। प्रत्येक मामले में, विभाजन प्रस्ताव को एक मजबूत राज्य-तंत्र द्वारा कमज़ोर पक्ष पर अपने विस्तार के लिए लागू किया गया था, उसकी देखरेख की गई, जिसने 'राष्ट्रवाद के क्षण' को उकसाया, जिसने नई राष्ट्रीय पहचान पैदा की। इसलिए विभाजन साहित्य का पता लगाने के लिए, विषम पहचानों के चश्मे से देखना आवश्यक है।

औपनिवेशिक काल के बाद के समय में रहते हुए, विभाजन साहित्य न केवल राष्ट्र शिल्प की प्रति-तथ्यात्मकता को खोलता है, बल्कि अलग-अलग देशों में जीवन के आसपास के क्षेत्र की खोज भी करता है। राजनीतिक स्वतंत्रता के समय में ऐसे विभाजन प्रस्ताव के पीछे के तर्क पर लंबे समय से सवाल उठाए जाते रहे हैं। विभाजन साहित्य को फिर से पढ़ने के इस प्रयास में 'आलोचनात्मक प्रति-तथ्यात्मकता' की भावना देखी जा सकती है।

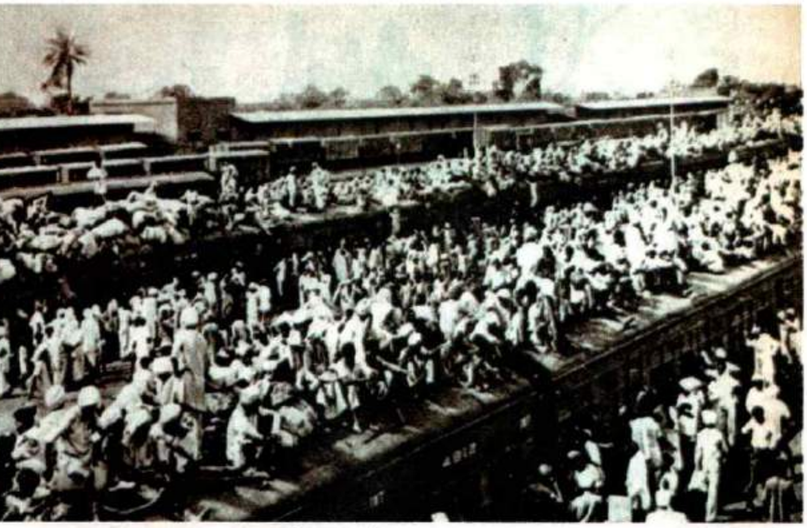

विभाजन के बाद का दृश्य

लेखक बांग्ला साहित्य के प्रोफेसर हैं और स्कूल ऑफ ह्यूमैनिटीज़, नेताजी सुभाष ओपन यूनिवर्सिटी, कोलकाता में निदेशक हैं। ईमेल: mkmnsou@gmail.com

Elite Academy For Education & Training Pvt. Ltd. ★ Delhi ★

विभाजन के बाद महिलाएँ और बच्चे

विभाजन साहित्य का आधार साहित्यिक शैली के रूप में विकसित हुआ और 1970 के दशक में स्वीकार किया गया, हालांकि यह राष्ट्र-स्थिति के आगमन और औपनिवेशिक उद्यम के अंत के साथ शुरू हुआ। विश्व के विभिन्न भागों से ऐसे उदाहरण लिए जा सकते हैं- फिलिस्तीनी लेखक घासन कानाफानी के मैन इन द सन (1962, फिलिस्तीन/इजराइल), एंटोन शमास का हिबरिउ उपन्यास अरेबैस्क्यूस (1988, फिलिस्तीन/इजराइल), ए बी येहोशुआ का पहला हिबरिउ उपन्यास द लवर (1977, इजराइली पहचान और प्रवासी), सलमान रुश्दी का मिडनाइट्स चिल्ड्रन (1980, भारत का विभाजन), आयरिश कवि और उपन्यासकार सीमस डीन का पहला उपन्यास रीडिंग इन द डार्ड (1996, आयरलैंड विभाजन), कोरियाई लेखक किम वोनिल का उपन्यास स्पिरिट ऑफ डार्कनेस (1973, कोरियाई विभाजन), पाक वानसो का उपन्यास द नेकेड ट्री (1970, कोरियन पार्टिशन), इजरायली लेखक ओज़ शेलाच का पिकनिक ग्राउंड्स: ए नॉवेल इन फ्रैगमेंट्स (2003, इजरायली डायस्पोरा), बांग्लादेशी लेखक अख्तरुजमान इलियास के दो बांग्ला उपन्यास द सोल्जर इन द एटिक (चिलेकोथार सेपाई, 1987, पाकिस्तान/बांग्लादेश विभाजन) और द सागा ऑफ ड्रीम्स (खोआबनामा, 1996, पाकिस्तान/बांग्लादेश विभाजन), यूगोस्लाविया के लेखक देब्रावका उग्रेसिक का उपन्यास द म्यूजियम ऑफ अनकंडीशनल सरेंडर (1998) और द मिनिस्ट्री ऑफ पेन (2004) दोनों यूगोस्लाविया के विभाजन के अनुरूप हैं। अंत में यह गीतांजलि श्री के हिंदी उपन्यास रेत समाधि (टूम ऑफ सैण्ड, 2018, भारतीय विभाजन) का उल्लेख करने योग्य है, जिसके अँग्रेज़ी अनुवाद को हाल ही में अंतर्राष्ट्रीय बुकर पुरस्कार प्राप्त हुआ है। जिन लेखकों ने विभाजन की पीड़ा को झेला है, उन्होंने उसे स्पष्ट रूप से व्यक्त किया है और यह राष्ट्र-राज्य के जटिल प्रक्षेपण के साथ जारी है। विभाजन साहित्य का यह पूरा दायरा परस्पर-विवादात्मक सामाजिक-राजनीतिक प्रतिद्वंद्विता और सांस्कृतिक विमर्श के एक क्षेत्र के रूप में उभरा है।

विभाजन साहित्य न केवल राष्ट्र शिल्प की प्रति-तथ्यात्मकता को खोलता है, बल्कि अलग-अलग देशों में जीवन के आसपास के क्षेत्र की खोज भी करता है। राजनीतिक स्वतंत्रता के समय में ऐसे विभाजन प्रस्ताव के पीछे के तर्क पर लंबे समय से सवाल उठाए जाते रहे हैं। विभाजन साहित्य को फिर से पढ़ने के इस प्रयास में 'आलोचनात्मक प्रति-तथ्यात्मकता' की भावना देखी जा सकती है।

पृष्ठभूमि

भारत तीन बार विभाजित राष्ट्र है जहाँ तीन अलग-अलग देशों के गठन के लिए तीन विभाजन हुए हैं। यदि समयरेखा में देखा जाए, तो 1905, 1947 और 1971 के बाद की घटनाओं ने पाकिस्तान, बांग्लादेश और भारत के नए कॉन्फिगर किए गए राष्ट्र के साथ आधुनिक दक्षिण एशिया को आकार दिया है। ब्रिटिश भारत, बंगाल प्रांत और पंजाब प्रांत के विभाजन ने भारत के उपनिवेशीकरण की प्रक्रिया को पूरा किया। सामाजिक-राजनीतिक और सांस्कृतिक प्रगति की इस जटिल प्रक्रिया के साथ, यह देखा गया है कि भाषा ने ऐतिहासिक वास्तविकताओं को एकीकृत या विघटित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

उर्दू, हिंदी, पंजाबी, बंगाली, सिंधी उस भाषा आधारित पहचानों की प्रमुख घटक हैं जो राष्ट्रीयता की लघुता को बताती हैं और जिससे साहित्यिक प्रयास मेल खाता है। दंगा-लूट-आतंक, जीवन की हानि, शरणार्थी संकट, मनोवैज्ञानिक आघात और बाद में, नुकसान की विरासत ने भारतीय लेखकों की उस पूरी पीढ़ी को हिलाकर रख दिया है जिन्होंने विभाजन की पीड़ा को अनुभव किया है। यह अब स्वीकृत तथ्य है कि इसमें लगभग 10 लाख लोग मारे गए, हालांकि जानकारों ने इससे कहीं अधिक (20 लाख) का दावा किया है।

विभिन्न समुदायों की 75,000 महिलाओं के साथ बलात्कार किया गया और उनका अपहरण किया गया या वे लापता हो गईं। हालिया स्कॉलरशिप में भारत और पाकिस्तान में लगभग 14.5 मिलियन को विस्थापित दर्शाया गया है (पूर्वी और पश्चिम / 'मुहाजिर' और 'उड़बस्तु') जबकि लगभग 3.5 मिलियन लोग लापता हो गए थे। तीन दशकों के बाद भी 1971 तक पूर्वी भाग में प्रवास जारी रहा। यह विभाजन की प्रक्रिया में सतत तबाही - "एक जटिल मानव त्रासदी" की विशालता को दर्शाता है। 1946 में 'ग्रेट कलकत्ता किलिंग' से लेकर नौखली दंगे तक, अमृतसर से लेकर लाहौर तक, सभी जगह भयावह और विचित्र नज़ारा विभाजन के एक और चेहरे- नए स्वतंत्र भारत के उद्भव पर अवांछित स्थितियों का निर्माण कर रहा था। इतिहास की प्रमुख आवाज़ों का ज़िक्र करते हुए मुशीरुल हसन ने टिप्पणी की- "स्वतंत्रता और विभाजन के ऐतिहासिक वृत्तांतों से अधिक, विस्थापन के व्यक्तिगत इतिहास भारतीय राष्ट्रवाद, धर्मनिरपेक्षता, अहिंसा और वास्तव में लोकतांत्रिक देश के महान आदर्शों के साथ विश्वासघात को दर्शाते हैं।"

इस श्रेणी में मुख्य रूप से लघुकथा और उपन्यासों का उल्लेख किया जा रहा है, हालाँकि, विभाजन पर थोड़ी बहुत कविताएँ और नाटक भी लिखे गये हैं। हिन्दी और उर्दू के लेखक इस क्षेत्र में अग्रणी थे। इनमें शामिल हैं-सआदत हसन मंटो, शायद भारतीय विभाजन के सबसे बेहतरीन लेखक हैं, जिन्होंने अपने व्यक्तिगत जीवन में विभाजन की हिंसा, अनिश्चितता, आघात का व्यक्तिगत जीवन में अनुभव किया और विभाजन की घटना के लिए मानव वृत्ति के पारस्परिक संबंध को कल्पना में पिरोया।

'ठंडा गोश्त', 'टोबा टेक सिंह, 'खोल दो', 'डॉग ऑफ टिटवाल' जैसी कहानियों को भारतीय संदर्भ में लिखे गए विभाजन के आघात की अब तक की सबसे गहरी याद के रूप में पढ़ा जा सकता है। फैज अहमद फैज ने अशांति के समय कुछ यादगार शायरी और नज़्म लिखीं। पश्चिमी पक्ष के कई उर्दू और हिंदी लेखकों द्वारा लिखित पर्याप्त स्मृति लेख जैसे कृष्ण चंदर की लघु कहानी (पेशावर एक्सप्रेस), कुर्रतुलन हैदर (आग का दरिया, 1959), यशपाल (झूठा सच, 1958-60), नसीम हिजाजी (खाक और खून), राही मासूम रजा (आधा गाँव), मनोहर मांगोनकर (ए बेंड इन द गंगा, 1964), रज़िया भट्ट (बानो), इंतिज़ार हुसैन (बस्ती, 1979), अमृता प्रीतम (पिंजर, 1950), भीष्म साहनी (तमस, 1987), के.एस. दुग्गल (मां प्यो लई 1974), खुशवंत सिंह (ट्रेन टू पाकिस्तान, 1990), कमलेश्वर (कितने पाकिस्तान, 2000) आदि। ये दर्दनाक अनुभव, हिंसा, बलात्कार और महिलाओं का अपहरण, शरणार्थी की पीड़ादायक स्मृति और जीवन के अज्ञात भाग्य के बारे में हैं। के.एस. दुग्गल ने 'बंद दरवाज़ा' (1959) नामक कविताओं का एक संग्रह और शीर्षक 'ढोया होया बूआ' (आधा बंद दरवाज़ा) एक संग्रह निकाला। विभाजन के पचास वर्षों के बाद, इन शीर्षकों का उल्लेख करते हुए उन्होंने लिखा- ''पंजाब के विभाजन और उसके परिणामस्वरूप होने वाले विस्थापन जैसे दर्दनाक अनुभव और इससे प्रभावित लोगों पर हुए अत्याचार और दुःख के बारे में लिखना आसान है, लेकिन यह इतना भी आसान नहीं है जितना लगता है। ऐसा लगता है कि जिसने भी इस विषय पर लिखने का प्रयास किया, उसमें वे संतुलन नहीं बना पाए। दरअसल इसका कारण सर्वनाश के लिए एक पक्ष या दूसरे को पूरी तरह से जिम्मेदार ठहराने की प्रवृत्ति रही है।''

सआदत हसन मंटो, शायद भारतीय विभाजन के सबसे बेहतरीन लेखक हैं, जिन्होंने अपने व्यक्तिगत जीवन में विभाजन की हिंसा, अनिश्चितता, आघात का व्यक्तिगत जीवन में अनुभव किया और विभाजन की घटना के लिए मानव वृत्ति के पारस्परिक संबंध को कल्पना में पिरोया। 'ठंडा गोश्त', 'टोबा टेक सिंह, 'खोल दो', 'डॉग ऑफ टिटवाल' जैसी कहानियों को भारतीय संदर्भ में लिखे गए विभाजन के आघात की अब तक की सबसे गहरी याद के रूप में पढ़ा जा सकता है।

कई लेखकों द्वारा यह तर्क दिया गया है जिन्होंने विभाजन का अनुभव किया था। हाल में कृष्णा सोबती ने अपने आखिरी उपन्यास 'ए गुजरात हियर, ए गुजरात देयर' (2017) में व्यक्त किया कि बंटवारे में अपने बचपन की दोस्त की हत्या की याद में वह कैसे जीवन भर विचित्र-सी वेदना में रही थीं। विभाजन हिंसा का विषयगत स्वभाव और इसकी अनिश्चितता किसी तरह एक पैटर्न दे रही है जिसका अब पता लगाया जा सकता है। लेकिन दशकों की निरंतरता के बाद, जैसा कि हाल के उपन्यासों में व्यक्त किया गया है विभाजन का विषय स्पष्ट रूप से नई प्रवृत्तियों को दिखा रहा है। शाश्वत दर्दनाक आयाम को जटिलताओं द्वारा प्रतिस्थापित किया गया है।

दूसरी ओर, बांग्ला लेखकों ने इस प्रयास में कुछ देर से प्रतिक्रिया दी है, हालांकि, बंगाल विभाजन पर बंदोपाध्याय के तीन समकालीन (ताराशंकर, माणिक और विभूतिभूषण) की अभिव्यक्ति का साथ-साथ पता लगाया जा सकता है। ऋत्विक घटक शायद सबसे बेहतरीन कलाकार थे जिन्होंने विभाजन के माहौल को मानव अस्तित्व की असुरक्षा को गहरी समझ के साथ चित्रित किया था। 'मेघे ढाका तारा', 'कोमलगांधार', 'सुवर्णलता' को वर्षों तक याद किया जा सकता है। नेमाई घोष के 'चिन्नामूल' ने शरणार्थी समय को ईमानदारी के साथ प्रस्तुत किया। जीवनानंद दास (जलपाईहाटी), अमरेंद्र घोष (भंगचे सुधु भंगचे), नरेंद्रनाथ मित्रा (पलंको, चेनामहल), अमियाभूषण मजूमदार (निर्बास, गढ़ श्रीखंड), सांता सेन (पितामही), अन्नदासंकर रे (क्रांतोदर्शी), नारायण सान्याल (बकुलतला पीएल कैंप), सुनील गंगोपाध्याय (अर्जुन, पूर्व पश्चिम), समरेश बसु (सौदागर, अदब), ज्योतिर्मयी देवी (ई-पार गंगा ओ-पार गंगा), अतिन बंदोपाध्याय (नीलकंठ पाखीर खोजे, मानुषेर घरबारी, ईश्वरर बागान त्रिलॉजी), गौर किशोर घोष (जल पोरे पता नरे, प्रेम नेई), प्रफुल्ल रे (के पातर नूको, सतोधरय बोए जय), देब्स रे (बरिसलर जोगेन मंडल, रिफ्यूजी), शिरसेन्दु मुखोपाध्याय (घुनपोका), हसन अजीजुल हक (आगुनपाखी), अमर मित्र (धुलोमती, दशमी दिबासे, कुमारी मेघेर देश चाई) जैसे लेखकों ने योगदान दिया।

भारतीय अँग्रेज़ी लेखक या अंतरराष्ट्रीय ख्याति के एनआरआई लेखकों ने भी अपने उपन्यास लेखन में केंद्रीय विचार के रूप में विभाजन के विषय को चुना है। बप्सी सिधवा (आइस कैंडी मैन, 1989), अमिताभ घोष (द शैडो लाइन्स, 1988), झुम्पा लाहिड़ी (शॉर्ट स्टोरी: इंटरप्रेटर ऑफ मैलेडीज, 1999), शौना सिंह बाल्डविन (व्हाट बॉडी रिमेम्बर्स, 2001), रोहिंटन मिस्त्री (ए फाइन) बैलेंस, 2001) ऐसे कुछ उदाहरण हैं। ये बंगाली और हिंदी में या अँग्रेज़ी में गैर-काल्पनिक और आत्मकथात्मक लेखन के कई उदाहरण हैं। जिन्हें बाद के दशकों में प्रकाशित किया गया, वे हैं- संखा घोष की 'सुपुरिबोनेर सारी', आतिया हुसैन की 'सनलाइट ऑन ए ब्रोकन कॉलम', सुनंदा सिकदर की 'दयामयीर कथा।'

इतिहास, संग्रह और पहल

1950 के दशक से भारतीय विभाजन इतिहास लेखन अच्छी तरह से विकसित हुआ है। पहले पांच दशकों में, यह उच्च राजनीति को समर्पित था और धीरे-धीरे नारीवादी रुख की नई रोशनी, उत्तरजीवी के आख्यान, जाति के दृष्टिकोण आदि पर आधारित हो गया। बी आर अम्बेडकर की पाकिस्तान या भारत का विभाजन (1945), डॉ श्यामाप्रसाद मुखर्जी की 'अवेक हिन्दुस्तान!' (1945), लैरी कोलिन्स और डोमिनिक लैपिएरे की 'फ्रीडम एट मिडनाइट' (1975) और 'इंडिया विन्स फ्रीडम' (मौलाना अबुल कलाम आज़ाद) जैसे अकाल्पनिक आख्यान तर्क-वितर्क के साथ जारी रहे। बांग्ला में, हिरणमय बंदोपाध्याय ने 'उद्‌बस्तु' लिखा, जिसमें पुनर्वास कार्य के लिए जिम्मेदार एक सरकारी अधिकारी के रूप में उनके अनुभवों का विस्तार से उल्लेख किया गया है। प्रफुल्ल चक्रवती की 'द मार्जिनल मैन' पश्चिम बंगाल में शरणार्थी पुनर्वास और उनकी स्थिति के रिकॉर्ड का पता लगाने का एक और विशाल व्यक्तिगत प्रयास है। अबुल मंसूर अहमद द्वारा 'अमर देखा रजनीतिर पंचस बचोर', अबुल हाशिम द्वारा 'अमर जिबोन ओ बिभागपुरबा बांग्लार राजनीति', कालीपाद बिस्वास द्वारा 'जुक्तो बांग्लार शेष अध्याय' (फज़लुल हक पर), तथागत रे

द्वारा 'भरत केशरी जुगपुरुष श्यामाप्रसाद' आदि की तरह पर्याप्त जीवनी लेख लिखे गए हैं।

भारत की स्वतंत्रता के पचास वर्षों के बाद, विभाजन के अध्ययन की एक नई लहर को नए दृष्टिकोण के साथ बनाया गया था। इसे कुछ नारीवादी विद्वानों जैसे उरबाशी बुटालिया (द अदर साइड ऑफ साइलेंस: वॉयस फ्रॉम द पार्टिशन ऑफ इंडिया), रितु मेनन और कमला भसीन (बॉर्डर एण्ड बाउंडरीज़), जशोधरा बागची (ट्रॉमा एण्ड द ट्रिंफ), वीना दास (मिरर ऑफ वायोलेंस: कम्युनिटीज़, रॉयट्स एण्ड सरवाइज़र्स इन साउथ एशिया) आदि भारतीय विभाजन के सात दशकों के बाद 'नए इतिहास' के नाम पर और भी नए दृष्टिकोण आ रहे हैं- जहाँ हाशिये और तीसरी पीढ़ी के लोगों के इतिहास की व्याख्या करने के दृष्टिकोण ने और अधिक स्थान बनाया है। अर्थात जया चटर्जी (बंगाल डिवाइड, स्पॉयल्स ऑफ पार्टिशन), आयशा जलाल (द सोल स्पोक्समैन, द पिटी ऑफ पार्टिशन), वजीरा फैजाला-याकूबली ज़मींदार की किताब 'द लॉन्ग पार्टिशन', यास्मीन खान की 'द ग्रेट पार्टिशन', अनम ज़केरिया की 'द फुटप्रिंट ऑफ पार्टिशन', आंचल मल्होत्रा की 'रैमनैंट्स ऑफ ए सेपरेशन', अनन्या जहाँआरा कबीर की 'पोस्ट पार्टिशन एमनेसिया', पिप्पा वर्डी (एशेज़ ऑफ 1947) उल्लेखनीय कार्य हैं। विभाजन काल्पनिक रचनाओं में तीसरी पीढ़ी के लेखक के प्रयास को भास्वती घोष द्वारा लिखित 'विक्ट्री कॉलोनी 1950', अंजलि एनजेटी द्वारा रचित 'पार्टेड अर्थ' (2021), निसिड हाजरी द्वारा लिखित 'मिडनाइट्स फ्यूरीज़' (2015) आदि में देखा जा सकता है।

इस साहित्यिक विधा ने पाठकों के बीच कैसे जगह बनाए रखी यह देखने के लिए इस संबंध में बांग्ला, अँग्रेज़ी और हिंदी में लघु कहानी और कविता के कई संग्रह देखे जा सकते हैं। इनमें मनबेंद्र बंदोपाध्याय द्वारा दो खंडों में भेद-विभेद (1992) और देब्स रे की रक्तामणि हरे (1999) संकलित अनुवाद में बंगाली और भारतीय लघु कथाएँ जिनमें विभिन्न भारतीय भाषाओं में लिखी गई बासठ लघु कथाओं का बंगाली अनुवाद शामिल है। बसाबी फ्रेजर ने 2008 में प्रकाशित उनके शीर्षक 'बंगाल पार्टिशन स्टोरीज़' में चालीस बंगाली लघु कथाओं को संकलित किया। इस संबंध में बेहतरीन संग्रहों में से एक भारत के विभाजन के बारे में आलोक भल्ला की कहानियाँ खंड 1, 2 और 3 (1994) है, जिसमें 63 भारतीय लघु कथाओं का अँग्रेज़ी में अनुवाद किया गया है। उन्होंने विभाजन की कहानियों की चार श्रेणियों को वर्गीकृत किया, ''जो इन तरीकों को दर्शाती हैं जिनमें लेखकों ने उन घटनाओं को समझने की कोशिश की जो अन्यथा अकल्पनीय थीं।'' विलाप तथा सांत्वना के बारे में कहानियाँ जिन पर आमतौर पर क्रोध और नकारात्मकता का आरोप लगता है और स्मृतियों की पुनर्प्राप्ति की कहानियों को आम तौर पर पहली पीढ़ी की कही जा सकती हैं, जिसने विभाजन देखा था।

बाद की पीढ़ी में सामूहिक स्मृति और भूलने की बीमारी की विरासत के प्रति रुचि रही हैं जिसने स्वयं को इसमें क्षेत्र में खुद को शामिल पाया है। किसी भी एक पक्ष के मौखिक आख्यानों के संग्रह ने भी इसके अनुसार इसमें मायने को जोड़ा है। 1950 के दशक में अमृत बाजार पत्रिका में प्रकाशित और बाद में दखिणारंजन बसु के शीर्षक 'चेरे आसा ग्राम' (1975) में संकलित कुछ हिंदू शरणार्थियों के व्यक्तिगत आख्यान की एक श्रृंखला थी। दूसरी ओर, एक पुलिस अधिकारी जिसने बंटवारे के समय हुई हिंसा के दौरान 'होशियारपुर से लाहौर' तक ट्रेन से यात्रा की। उन्होंने होशियारपुर से लाहौर नाम से उर्दू में लिखा था।

भारत विभाजन के कारण पलायन

इन दो पुस्तकों को हाल के वर्षों में पुनर्प्रकाशित किया गया है, जिससे विभाजन की कहानी की पाठकों की अब भी मांग का पता चलता है।

उपसंहार

पिछले कुछ दशकों में, विभाजन साहित्य ने दुनिया भर में पाठकों और विद्वानों का अत्यधिक ध्यान आकर्षित किया है। तीन बार विभाजित भारतीय उपमहाद्वीप पर साहित्यिक ग्रंथों के विशाल संग्रह को वर्तमान संदर्भ में फिर से पढ़ने की ज़रूरत है।

विभाजन साहित्य के क्षेत्र में उर्दू और हिंदी लेखन का पर्याप्त भंडार उपलब्ध है। इसके विपरीत, हिंदी या अँग्रेज़ी में अनुवाद की कमी के कारण विभाजन पर बांग्ला लेखन की उपस्थिति राष्ट्रीय स्तर पर अस्पष्ट है। आज एजेंसियाँ और प्रकाशन घराने दक्षिण एशिया में विभाजन की थीम को फलने-फूलने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। हालाँकि, भारतीय उपमहाद्वीप और इसके पड़ोसी देशों में इसके जटिल प्रक्षेपण के साथ विभाजन के बाद सीमावर्ती अध्ययन, प्रवासन अध्ययन, दलित अध्ययन, स्मृति अध्ययन तथा अन्य जैसी नई शैलियों और विभाजन के बाद अन्योन्याश्रित मामलों का उदय हुआ। नतीजतन, फोकस आजीविका के विभिन्न स्तरों वाली सीमा के साथ सामान्य जीवन पर स्थानांतरित हो गया है। आज़ादी के 75 साल बाद बंटवारे के साहित्य का पुनर्पाठ अनिवार्य रूप से भारतीय उपमहाद्वीप के नए जीवन का प्रतिपादन हो सकता है। ■

संदर्भ

1. राष्ट्र के संदर्भ में विभाजन स्मृति और विभाजन साहित्य के पैटर्न पर तुलनात्मक अध्ययन के लिए देखें जो क्लेरी (2002), लिटरेचर, पार्टिशन एण्ड द नेशन-स्टेअ, सीयूपी;
2. जिल दिदुर (2001), लिफ्टिंग द वेल् रीकनसिंडरिंग द टास्क ऑफ लिटरेरी हिस्टरोग्राफी, हस्तक्षेप 3.3 पेज 446-51;
3. अन्ना बर्नार्ड (2010), 'फॉर्म्स ऑफ मेमरी: पार्टिशन एज़ ए लिटरेरी पैराडिग्म', अलिफ 2010 पृष्ठ 9-33;
4. मुशुइरुल हसन (1997), इंडिया पार्टिशनंड: द अदर फेस ऑफ फ्रीडम वॉल्यूम 1और 2, रोली बुक्स, नई दिल्ली;
5. [illegible] (2018), द पार्टिशन ऑफ इंडिया, ओयूपी;
6. पैंग्स ऑफ पार्टिशन: द हुमन डाइमेंशन्स, खंड 2 (2002), सेटर और गुप्ता एड, आईसीएचआर - मनोहर, नई दिल्ली;
7. स्टोरीज़ अबाउट द पार्टिशन ऑफ इंडिया (2013), एड आलोक भल्ला, मनोहर, नई दिल्ली।

Elite Academy For Education & Training Pvt. Ltd. * Delhi *

प्रतिबंधित प्रकाशन

चमन लाल

विश्वभर में दमनकारियों ने विभिन्न कालों में स्थापित व्यवस्था के विरोधी विचारों को दबाने का प्रयास किया है। परन्तु इस दमन के बावजूद मानव सभ्यता और संस्कृति स्वतंत्र विचारों और विरोध के स्वरों के साथ विकसित होती रही हैं। यदि सुकरात जैसे पूर्वकालिक दार्शनिक और गैलिलियो तथा ब्रूनो जैसे वैज्ञानिक मुक्त विचारों और वैज्ञानिक खोजों के लिए जान की बाज़ी न लगाते तो विश्व इतनी प्रगति नहीं कर सकता था जितनी आज के युग में दिखाई दे रही है। प्रतिबंधित कविताओं में देश को विदेशी शासकों से स्वतंत्र कराने की उत्कट इच्छा झलकती है और संघर्ष के उस दौर में अपना आज़ादी का लक्ष्य पाने के लिए बलिदान करने और यातनाएँ सहने की भावना की अनुभूति होती है।

1757 में प्लासी की लड़ाई में नवाब सिराजुद्दौला की पराजय के बाद ईस्ट इंडिया कंपनी ने भारत के बड़े भाग पर कब्ज़ा कर लिया था और फिर 29 जनवरी, 1780 को जेम्स ऑगस्तस हिक्की के संपादन में ब्रिटेन के औपनिवेशिक शासन के दौरान भारत की, बल्कि कहना चाहिए एशिया की पहली साप्ताहिक समाचार पत्रिका 'हिक्कीज़ बंगाल गज़ेट' के प्रकाशन के साथ ही प्रिंटिंग प्रेस (छापेखाने) और अखबारों की शुरूआत हुई।

कंपनी ने 1773 में वॉरेन हेस्टिंग्स को भारत का पहला गवर्नर जनरल नियुक्त किया और उसने पहले भारतीय समाचार पत्र हिक्कीज़ बंगाल गज़ेट को 2 वर्ष के भीतर समाप्त कर दिया और 30 मार्च, 1782 से इसका प्रकाशन बंद हो गया। ब्रिटिश साम्राज्य के विरोध में आवाज़ उठाने वाली भारतीय प्रेस और लेखों को दबाने के उद्देश्य से कंपनी ने अनेक क़ानून लागू किए। गवर्नर जनरल लॉर्ड वैलेस्ले ने 1799 में पहला सेंसरशिप ऑफ प्रेस एक्ट लागू किया। फिर 1818 का रेग्युलेशन III आया जिसके तहत लाला लाजपतराय को बर्मा की मांडले जेल भेजा गया था। इसके बाद ब्रिटिश शासन के दौरान लायसेंसिंग रेग्यूलेशंस एक्ट 1823, प्रेस एक्ट 1835 यानी चार्ल्स मेट्कॉफ एक्ट, लायसेंसिंग एक्ट 1857 आदि अनेक क़ानून लाए गए।

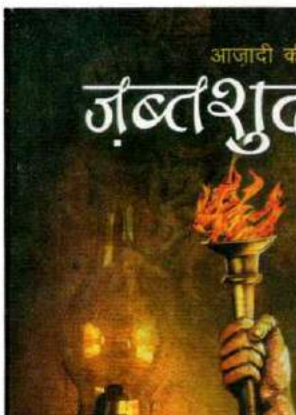

मिर्ज़ा बेदार बख़्त के संपादन में उर्दू अख़बार पयाम-ए-आज़ादी यानी स्वतंत्रता का संदेश ने 1857 में भारत की स्वतंत्रता के प्रथम युद्ध का समर्थन किया। ऐसा माना जाता है कि उन्हें सार्वजनिक रूप से फाँसी दे दी गई थी और जिन पाठकों के घरों में इस अखबार के अंक पाए गए उन्हें भी कंपनी शासकों ने फाँसी पर लटका दिया। 1857 की लड़ाई के दौरान उर्दू और अन्य भारतीय भाषाओं के अनेक समाचार पत्रों पर रोक लगा दी गई थी।

1858 के बाद देशद्रोह अधिनियम 124-ए लागू किया गया और इसका इस्तेमाल बाल गंगाधर तिलक जैसे स्वतंत्रता सेनानियों की आवाज़ और उनके विचारों को दबाने के लिए किया गया और उनके अखबार 'केसरी' पर मुक़दमा चलाकर उन्हें छह वर्ष की क़ैद की सजा दे दी गई। 1898 में 124-ए का दायरा बढ़ाकर इसमें अनुच्छेद 153-ए जोड़ दिया गया जिसके तहत विभिन्न वर्गों के बीच दुर्भाव फैलाने की धारा भी लागू हो गई। बाद में अनुच्छेद 295-ए को भी इसी क़ानून का हिस्सा बना दिया गया। ब्रिटिश शासकों ने ये सभी क़ानून स्वाधीनता संग्राम को दबाने के लिए लागू किए थे जो भारत,

लेखक सेवानिवृत्त प्रोफ़ेसर और पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़ के डीन रहे हैं तथा नई दिल्ली के भगत सिंह अभिलेखागार और स्रोत (रिसोर्स) केंद्र के मानद परामर्शदाता हैं। ईमेल: prof.chaman@gmail.com

पाकिस्तान और बांग्लादेश में चल रहे थे जबकि उनके अपने देश ब्रिटेन में यह कानून समाप्त कर दिया गया था। 1898 में सरकारी गोपनीयता कानून और बाद में भारतीय डाकघर कानून तथा भारतीय सीमाशुल्क कानून के ज़रिए पुस्तकों और प्रकाशनों पर नियंत्रण लगाया गया। फिर, भारतीय प्रेस अधिनियम, 1910 ही बड़ा और मुख्य कानून बन गया और इसमें समय-समय पर संशोधन किए जाते रहे।

राज्यों और केंद्रीय स्तर पर इन विभिन्न कानूनों के प्रावधानों के माध्यम से पुस्तकों और प्रकाशनों पर प्रतिबंध लगा दिए गए और प्रकाशकों पर भारी जुर्माना लगाकर उन्हें जेल में डाल दिया गया। जनरल एन बैरियर ने 1974 में अपना शोधकार्य- ''बैन्ड कंट्रोवर्शियल लिटरेचर एंड पॉलिटिकल कंट्रोल इन ब्रिटिश इंडिया- 1907-1947'' अर्थात् '1907 से 1947 के बीच ब्रिटिश इंडिया में प्रतिबंधित साहित्य और राजनीतिक नियंत्रण' प्रकाशित किया जिसमें इन सभी प्रतिबंधित प्रकाशनों का विवरण काफी विस्तार से दिया गया है। बाद में गुरदेव सिंह सिद्धू ने भगत सिंह के बारे में अपने शोध में प्रतिबंधित साहित्य पर और संतोष भदोरिया तथा रुस्तम रॉय जैसे कुछ हिन्दी विद्वानों ने इस क्षेत्र में कुछ और शोधकार्य किया। संभवतः विभिन्न भारतीय भाषाओं के अन्य विद्वानों ने भी इस क्षेत्र में योगदान किया है। गुरदेव सिंह ने भारतीय भाषाओं के 66 प्रकाशनों और तीन अँग्रेज़ी प्रकाशनों की सूची तैयार की थी जिन पर नई दिल्ली के भगत सिंह भारतीय राष्ट्रीय अभिलेखागार और लंदन की ब्रिटिश लायब्रेरी ने प्रतिबंध लगाए थे और प्रतिबंधित भारतीय साहित्य इन्हीं दोनों संस्थानों में मौजूद है क्योंकि ब्रिटिश शासक प्रत्येक प्रतिबंधित प्रकाशन की प्रति लंदन भेजते थे जहाँ इन्हें सुरक्षित रखा गया है।

जनरल बैरियर के अनुसार नई दिल्ली के भारतीय राष्ट्रीय अभिलेखागार (एनएआई) में अँग्रेज़ी सहित नौ भारतीय भाषाओं में कुल 1,244 प्रतिबंधित प्रकाशन हैं जबकि ब्रिटिश संग्रहालय में 1,569 और इंडिया ऑफिस लायब्रेरी और ब्रिटिश संग्रहालय के रिकॉर्ड इकट्ठे करके ब्रिटिश लायब्रेरी में रख दिए गए हैं। इस प्रकार अब कुल 2,664 प्रतिबंधित प्रकाशन ब्रिटिश लायब्रेरी में हैं और ऐसे 1,244 प्रकाशन एनएआई में हैं। लेकिन इनमें कई प्रकाशनों की दो प्रतियाँ भी हो सकती हैं क्योंकि ब्रिटिश अधिकारी दिल्ली और लंदन में इन प्रतिबंधित प्रकाशनों की कई-कई प्रतियाँ रखते थे। स्वयं एनआईए ने कुछ चुने हुए प्रतिबंधित साहित्य के कई संस्करण प्रकाशित किए हैं। विभिन्न भाषाओं में इन प्रतिबंधित प्रकाशनों के शीर्षकों (नामों) को देखने से इन विषयों की पहचान की दृष्टि से उभरने वाले मुख्य शब्द हैं: गाँधी, भगत सिंह, आज़ादी, इंकलाब, देशभक्ति, गीत तराने, खूनी, फाँसी, देश, वतन, ज़ुल्म, ज़ालिम आदि। इन रिकॉर्डों के कुछ स्रोत पाकिस्तान के पंजाब प्रांत अभिलेखागार, लाहौर; कैंब्रिज विश्वविद्यालय, ब्रिटेन; शिकागो विश्वविद्यालय के दक्षिण एशिया अनुसंधान केंद्र; कैलिफोर्निया में बर्कले विश्वविद्यालय के गदर पार्टी अभिलेखागार; न्यूयॉर्क पब्लिक लायब्रेरी; कनाडा और राष्ट्रीय अभिलेखागार, सिंगापुर में तथा उन देशों में भी हैं जहाँ गदर पार्टी का साहित्य भेजा जाता था।

प्रकाशन विभाग ने इन प्रतिबंधित प्रकाशनों में से चुनी हुई कविताओं का पहली बार 1987 में और फिर 1998 में प्रकाशन किया था। इनमें से एक प्रकाशन का शीर्षक है- 'आज़ादी की लड़ाई के ज़ब्तशुदा तराने' और दूसरे का शीर्षक है: 'ज़ब्तशुदा गीत: आज़ादी और एकता के तराने।'

भारत सरकार के सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय के प्रकाशन विभाग ने इन प्रतिबंधित प्रकाशनों में से चुनी हुई कविताओं का पहली बार 1987 में और फिर 1998 में प्रकाशन किया था। 2021 में भारत की स्वतंत्रता की 75वीं वर्षगांठ के अवसर पर इन दोनों प्रकाशनों को नए आकर्षक रूप में पुनः प्रकाशित किया तथा हर कविता या गीत के साथ कलात्मक चित्र भी जोड़े हैं। इनमें से एक प्रकाशन का शीर्षक है- 'आज़ादी की लड़ाई के ज़ब्तशुदा तराने' और दूसरे का शीर्षक है- 'ज़ब्तशुदा गीत: आज़ादी और एकता के तराने।' इनके बारे में यहाँ जरा विस्तार से चर्चा की जाएगी।

प्रकाशन विभाग द्वारा प्रकाशित कविताओं के पहले संग्रह का शीर्षक था- 'ज़ब्तशुदा गीत: आज़ादी और एकता के तराने' जिसका अनुवाद लगभग है- 'प्रतिबंधित गीत: स्वतंत्रता और एकता के तराने।' इसका संपादन 1987 में रामजन्म शर्मा ने किया था और 2021 को इस संग्रह का पुनः प्रकाशन किया गया जिसमें कविताओं के साथ ही कलाकारों द्वारा उनसे संबद्ध चित्र भी जोड़े गए हैं। इस संग्रह के संपादक रामजन्म शर्मा ने अपने संपादकीय में उल्लेख किया है कि एनआईए में उपलब्ध रिकॉर्डों के अनुसार हिन्दी की 264, उर्दू की 58, तमिल की 19, तेलुगु की 10, पंजाबी और गुजराती की 22-22, मराठी की 13, सिंधी की 9, ओडिया की 11, बांग्ला की 4 और कन्नड़ की 1 पुस्तक प्रतिबंधित अथवा ज़ब्त की गई थीं। इनमें से कई देवनागरी लिपि में, अनूदित अथवा मूल रूप में प्रकाशित की गई थीं। ज़ब्तशुदा गीत देवनागरी लिपि में लिखी कविताओं का संग्रह है। कुल 59 में से लगभग 41 कवियों के नाम दिए गए हैं और शेष 18 कवियों के नाम अज्ञात हैं। इस संग्रह में रवीन्द्रनाथ टैगोर, इक़बाल, माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्रा कुमारी चौहान और रामप्रसाद बिस्मिल जैसे जाने-माने कवि और उनकी कविताएँ शामिल हैं। स्वतंत्रता की 75वीं वर्षगांठ पर प्रकाशन विभाग की ओर से 'आज़ादी की लड़ाई के ज़ब्तशुदा तराने' शीर्षक से प्रकाशित विशेष संग्रह में स्वतंत्रता संग्राम के प्रतिबंधित गीतों का अनुवाद प्रकाशित करने का प्रयास किया गया है। 1998 के प्रथम संस्करण का पुनः प्रकाशन अत्यंत आकर्षक और शानदार रूप से 135 पृष्ठों के संग्रह के रूप में किया गया है जिसमें 100 जाने-माने और 12 अज्ञात कवियों की 112 कविताएँ संग्रहित की गई हैं और सभी 112 कविताओं के साथ कलात्मक ढंग से बनाए चित्र भी दिए गए हैं। इस वृहद संग्रह में कुछ कविताएँ और कवि वहीं के वहीं हैं यानी दोहराए गए हैं परन्तु संग्रह निश्चित रूप से बहुत समृद्ध है। अंतरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त उर्दू कवि/शायर मोहम्मद इक़बाल की कालजयी रचना 'सारे जहाँ से अच्छा हिंदोस्तां हमारा/हम बुलबुले हैं इसकी ये गुलिस्तां हमारा' इस संग्रह का भाग है। हिन्दी की सुप्रसिद्ध कवियत्री सुभद्रा कुमारी चौहान की लोकप्रिय और जोशीली कविता 'झाँसी की रानी' को 'आज़ादी की देवी' के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इसमें झाँसी की रानी के ब्रिटिश शासन के खिलाफ़ वीरता और साहसपूर्ण संघर्ष का वर्णन बहुत शानदार तरीके से किया गया है जिसमें मात्र 23 वर्ष

की वीरांगना झाँसी की रानी ने अनेकानेक ब्रिटिश सैनिकों को मौत के घाट उतारकर अपने प्राण न्योछावर कर दिए। माखनलाल चतुर्वेदी की 'पुष्प की अभिलाषा' यानी 'फूल की इच्छा' लघु कविता है जिसमें स्वतंत्रता की उत्कट भावना की सजीव अभिव्यक्ति की गई है। इस कविता में फूल की इसी इच्छा की अभिव्यक्ति है कि उसे उसी राह में फेंक दिया जाए जिससे होकर देशभक्ति के दीवाने मातृभूमि के लिए बलिदान देने जाएंगे। मान्यता यही है कि फूल किसी सुंदरी के बालों को सजाने या किसी सम्राट के सम्मान में भेंट स्वरूप दिए जाने के लिए लालायित रहते हैं पर कवि की कल्पना का फूल उस मार्ग पर बिछ जाना चाहता है जिस पर से होकर आज़ादी के दीवाने सिपाही अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए शीश चढ़ाने जाएंगे। श्यामलाल गुप्त प्रसाद की सुप्रसिद्ध कविता झंडे का गीत "विश्वविजयी तिरंगा प्यारा झंडा ऊँचा रहे हमारा।"

अमर शहीद बिस्मिल और अशफ़ाकुल्ला खां, दोनों ही महान कवि थे। हालांकि 'सरफ़रोशी की तमन्ना...' को रामप्रसाद बिस्मिल की रचना माना जाता रहा है जबकि इसके रचयिता एक अन्य कवि-बिस्मिल अजीमाबादी थे। यह रचना अत्यंत लोकप्रिय है और इसे क्राँतिकारियों पर बनी कई फिल्मों में शामिल किया जा चुका है।

अमर शहीद बिस्मिल और अशफाकुल्ला खां, दोनों ही महान कवि थे। हालांकि "सरफरोशी की तमन्ना..." को रामप्रसाद बिस्मिल की रचना माना जाता रहा है जबकि इसके रचयिता एक अन्य कवि-बिस्मिल अजीमाबादी थे। यह रचना अत्यंत लोकप्रिय है और इसे क्राँतिकारियों पर बनी कई फिल्मों में शामिल किया जा चुका है, विशेषकर शहीद भगत सिंह के जीवन पर बनी मनोज कुमार की फिल्म 'शहीद' में तो यह गीत बहुत ही मधुर ढंग से प्रस्तुत किया गया था। इस गीत का मुखड़ा इस प्रकार है- "सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है/देखना है ज़ोर कितना बाजू-ए-कातिल में है..." इसका अर्थ यह है कि हमारे दिलों में आज़ादी के लिए अपने सिर कटाने की इच्छा है और हमें यह देखना या आज़माना है कि मारने वाले के हाथों में कितनी ताक़त है! शहीद अशफाकुल्ला खां उर्दू में कविता लिखते थे। इस संग्रह में उनकी कविताओं के कुछ अंश लिए गए हैं जिनमें उनके अंतर्मन की भावनाएँ उजागर होती हैं। उन्होंने लिखा था- "वतन हमारा रहे सलामत और आज़ाद/हमारा क्या है हम रहें ना रहें...।"

टैगोर की 'भारत प्रशस्ति' भी संग्रह में सम्मिलित की गई है। कवि ज्योति शंकर (मास्टर नूरा) ने 1930 में लिखा-"भारत न रह सकेगा हर्गिज़ गुलामखाना/आज़ाद होगा, होगा आता है वो ज़माना" जिसका अर्थ है कि वह समय जल्दी आने वाला है कि जब भारत पराधीन नहीं रहेगा। हिन्दी कवि चकोर की 1930 में लिखी कविता 'किसान' में भारतीय किसानों की ब्रिटिश शासन में दीनहीन अवस्था का चित्रण है। भारत के जागीरदार बेहद जुल्म करते थे क्योंकि ब्रिटिश शासक उन्हें शह देते थे।

स्वाधीनता संग्राम के दौर में कवि हमदम ने हिन्दू-मुस्लिम एकता पर 'प्यारा हिंदुस्तान हमारा' शीर्षक कविता लिखी थी जिसमें उन दिनों की भावना की अभिव्यक्ति स्पष्ट झलकती है- "हिंदू हो या मुसलमान, कह दो मुखालिफ़ों से/हिंदी हैं हम, वतन है हिंदोस्तां हमारा....।" इसमें ब्रिटिश शासकों को चेतावनी दी गई है कि मुखालिफ यानी विरोधी लोग समझ लें कि हम भारतीय हैं और भारत ही हमारा देश है जो 1947 में विभाजन होने से पहले 'हिंदोस्तां' नाम से जाना जाता था और संविधान में इसका नाम भारत बताया गया है। भारत-समर्थक ब्रिटिश कवि अर्नेस्ट जोंस ने 1858 के स्वाधीनता संग्राम पर 'रिवोल्ट ऑफ हिन्दोस्तान' यानी 'भारत में विद्रोह' शीर्षक से कविता लिखी थी।

जांनिसार अख़्तर, साहिर लुधियानवी, हफीज़ जालंधरी, हसरत मोहानी, मखदूम मोइउद्दीन, टीकाराम सुखन, सोहन लाल द्विवेदी, अली सरदार जाफरी, बृजनारायण चकबस्त, स्वामी नारायणनन्द, पंडित मेलाराम 'वफ़ा', जैसे अनेक सुप्रसिद्ध लेखक भी इस संग्रह में शामिल हैं। स्वाधीनता संघर्ष के दौर से जुड़ी कुछ प्रमुख घटनाओं में 1857 का स्वाधीनता संग्राम, 1919 का जलियाँवाला बाग हत्याकांड, 1922 का चौरी चौरा, 1927 का काकोरी कांड, शहीद बिस्मिल, अशफाक़, नौजवान भारत सभा और भगत सिंह की हिंदुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिक एसोसिएशन शामिल हैं। प्रकाशन विभाग के विशेष संस्करणों में शामिल कविताओं में जॉन सैंडर्स और माइकेल ओ डायर की हत्या, 1929 में असेंबली में बम फेंकना और 1942 का भारत छोड़ो आंदोलन बहुत आकर्षक ढंग से शामिल किए गए हैं। ■

Elite Academy For Education & Training Pvt. Ltd. ★ Delhi ★

हमारी पत्रिकाएं

योजना, कुरुक्षेत्र, आजकल, बाल भारती

में विज्ञापन देने हेतु

संपर्क करें :
अभिषेक चतुर्वेदी, संपादक
प्रकाशन विभाग
सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार
सूचना भवन, सी जी ओ कॉम्प्लेक्स, लोधी रोड, नई दिल्ली-110003
दूरभाष : 011-24367453
ई मेल : pdjucir@gmail.com

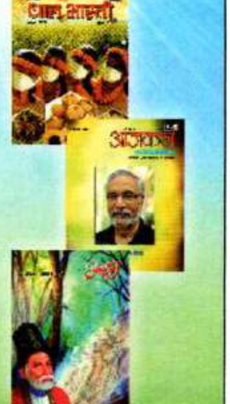

Dr. Vishwanath Karad
MIT WORLD PEACE UNIVERSITY | PUNE
TECHNOLOGY, RESEARCH, SOCIAL INNOVATION & PARTNERSHIPS
MIT-WPU
WORLD'S FIRST UNIVERSITY FOR LIFE TRANSFORMATION

MAKE A **PROMISE** TO **CHANGE**

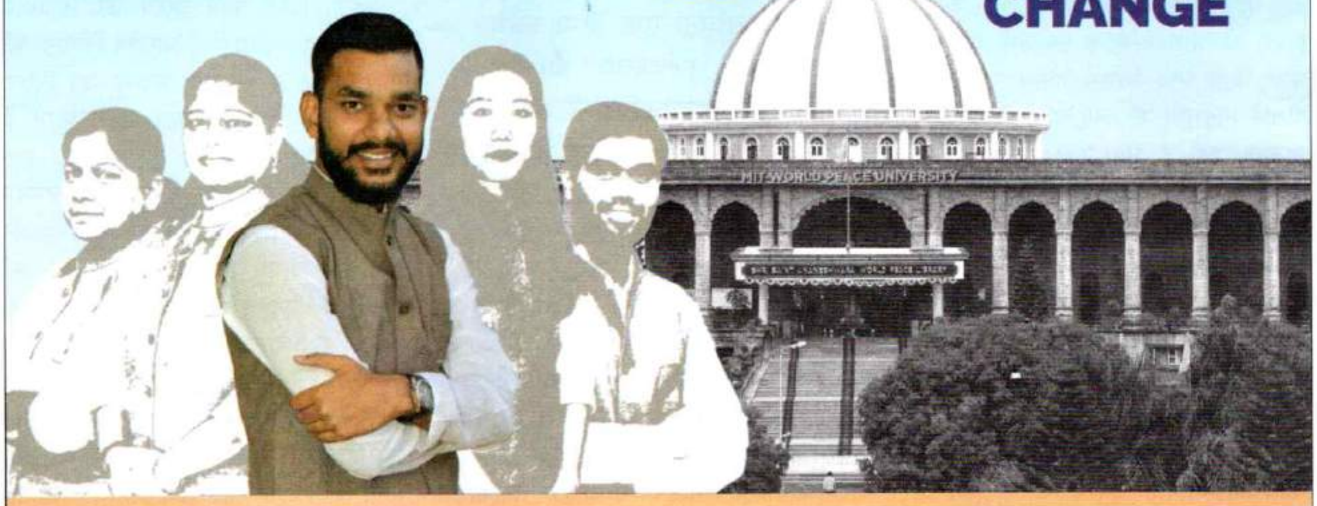

650+ Industry Partnerships | Internship Assistance | ₹ **37.26** CTC Highest Salary Package offered | **100,000+** Alumni Globally

ADMISSIONS OPEN - 2022

MERIT -BASED SCHOLARSHIPS WORTH Rs. 30+ Cr

Master's degree program in Political Leadership & Government (MPG)

2 Years | 4 Semesters

- Interactive sessions with national-level leaders from Politics, Bureaucracy, Judiciary, Media, Corporate and Social / Development organizations
- National Study Tour to Delhi
- Internships for up to 10 months with offices of Political Leaders & Political parties

Eligibility: Graduate from any stream OR Equivalent with a minimum 50 % marks (agg)

BA Hons (Public Administration) (BPA)

4 Years* | 8 Semesters (*as per New Education Policy)

- Specialization in Business administration or Civil service preparation
- A bridge between public and private administration
- Combines subjects of management with expertise on Governance
- Personality Traits, Management skills and participatory learning administration

Eligibility: HSC (10+2) from any stream OR Equivalent with a minimum 50 % marks

BA Hons (Government & Administration) (BAGA)

4 Years* | 8 Semesters (*as per New Education Policy)

- Improve readiness for UPSC Civil Services (IAS) Examination
- Mentoring by Civil Servants & UPSC toppers.
- Interdisciplinary study with a range of subject areas

Eligibility: HSC (10+2) from any stream OR Equivalent with a minimum 50 % marks

Post Graduate Program in Public Policy (PGPPP)

11 months | 3 Semesters

- KPMG as a knowledge partner
- Thrust on research
- Lectures by eminent academicians and practitioners
- Online course with flexible timings

Eligibility: Graduate / appearing final year from any stream OR Equivalent with a minimum 50 % marks (agg)

APPLY ONLINE

admissions.mitwpu.edu.in | admissions@mitwpu.edu.in | 020 - 7117 7137 | 98814 92848

Elite Academy For Education & Training Pvt. Ltd. ★ Delhi ★

YH-2000/2022

Elite Academy For Education & Training Pvt. Ltd. ★ Delhi ★

स्वतंत्रता-संघर्ष के दौर में बांग्ला रंगमंच और सिनेमा

अमिताव नाग

1876 में ड्रामेटिक परफ़ोर्मेंसेस एक्ट को लागू करने के बाद, ब्रिटिश शासकों को जल्दी समझ में आ गया था कि सिनेमा में लोगों की राय पर असर डालने की ज्यादा बड़ी क्षमता है। इसीलिए प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति के दौर में, 1918 में इंडियन सिनेमेटोग्राफ एक्ट पारित किया गया जो 1 अगस्त 1920 से लागू हो गया। यह ब्रिटिश सिनेमेटोग्राफ एक्ट 1909 पर आधारित था। लेकिन भारतीय क़ानून का असली मकसद भारत में सार्वजनिक प्रदर्शन के लिए दिखाई जाने वाली फिल्मों को सेंसर करने का था। सवाक् सिनेमा के शुरू होने के बाद बांग्ला सिनेमा ने शरतचंद्र चटर्जी, बंकिम चन्द्र चटर्जी और कभी-कभी रवीन्द्रनाथ टैगोर जैसे साहित्यकारों के समृद्ध बांग्ला साहित्य से प्रेरणा ली। कथानक के महत्व की इसी परम्परा की वजह से, आम बोलचाल में अब भी बंगाली लोग सिनेमा को 'बोइ' (पुस्तक) बोलते हैं।

1876 में एक अध्यादेश जारी किया गया जिसके अंतर्गत ब्रिटिश सरकार बंगाल में किसी भी नाटक के प्रदर्शन पर प्रतिबंध लगा सकती थी जो सरकार की राय में कुत्सित, किसी को बदनाम करने वाला, राजद्रोह भड़काने वाला, अश्लील अथवा अन्य किसी रूप में जन-हित के प्रतिकूल हो। कुछ ही दिनों में बांग्ला रंगमंच में क्राँतिकारी भावनाओं पर प्रतिबंध लगाने के लिए ड्रामेटिक परफ़ोर्मेंसेस एक्ट, 1876 लागू हो गया। औपनिवेशिक शासन का विरोध करते हुए सरकारी प्रतिबंधों से बचने के लिए, नाटककारों ने अपने राष्ट्रवादी विचारों के प्रचार-प्रसार के लिए पौराणिक-मिथकीय नाटक करने शुरू किए। 19वीं शताब्दी के अंत और 20वीं शताब्दी के प्रारम्भ में, 'स्वदेशी' आंदोलन के दौर में बांग्ला रंगमंच अतीत का गौरव-गान करने लगा। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में, विभिन्न कला-रूपों में उत्कट राष्ट्रवाद की अभिव्यक्ति के इस दौर की पृष्ठभूमि में, देश के स्वाधीनता संघर्ष में बांग्ला सिनेमा की भूमिका की पड़ताल कर सकते हैं।

1795 में, एक रूसी भाषाविद् तथा भारतविद् गेरासिमस्तेपानोविच लेबेदेव ने ब्रिटिश सत्ता की तत्कालीन राजधानी कलकत्ता (अब कोलकाता) में प्रोसेनियम (अग्रमंच) नाटकों का मंचन शुरू किया। इन यूरोपीय नाटकों का बांग्ला में रूपांतर किया जाता था और स्थानीय कलाकार इनमें अभिनय करते थे। इस तरह, लेबेदेव की आधुनिक भारतीय रंगमंच के विकास में अग्रणी भूमिका रही। हालांकि उनके नाटक, भरत मुनि के नाट्यशास्त्र पर आधारित पारम्परिक भारतीय रंगमंच से अलग तरीके के थे। 19वीं शताब्दी के मध्य में, बंगाल के महान कवि-नाटककार मधुसूदन दत्त ने बेलगछिया में नाटकों का मंचन शुरू किया। ये नाटक पाश्चात्य रंगमंच से प्रभावित थे। दत्त ने 1858 में पाश्चात्य शैली में शर्मिष्ठा नाटक लिखा जो महाभारत की देवयानी-ययाति की कथा पर आधारित था। इसे बांग्ला में लिखा पहला मौलिक नाटक माना जाता है। अगले वर्ष दत्त ने दो प्रहसन लिखे: एकेई की बोले सभ्यता? और बुरोशालिकेरघरेरो। पहले प्रहसन में उन्होंने अँग्रेज़ी पढ़े-लिखे युवा बंगालियों की लतों, बेतरतीब व्यवहार और अनैतिकता पर व्यंग्य किया, जबकि दूसरे प्रहसन में रूढ़िवादी हिन्दू समाज के कट्टर और भ्रष्ट लोगों द्वारा चोरी-छिपे किए जा रहे अनैतिक कार्यों का मज़ाक बनाया गया था। सामाजिक दृष्टि से सजग इन नाटकों को सराहा गया लेकिन सही मायनों में प्रथम 'स्वदेशी' नाटक था दीनबंधु मित्र का 'नील दर्पण', इसमें बंगाल के ग्रामीण क्षेत्रों में नील की खेती कर रहे किसानों की दारुण दशा और अँग्रेज़ निलहे जमींदारों द्वारा उन पर किए जा रहे अत्याचारों का चित्रण था। नील-खेतिहरों के तत्कालीन विद्रोह को चित्रित करता यह नाटक 1859 में लिखा गया, जबकि इसका मंचन

लेखक फिल्म-समीक्षक और फिल्म पत्रिका 'सिलुएट' के एक संस्थापक-सदस्य और वर्तमान संपादक हैं। ईमेल: amitava.nag@gmail.com

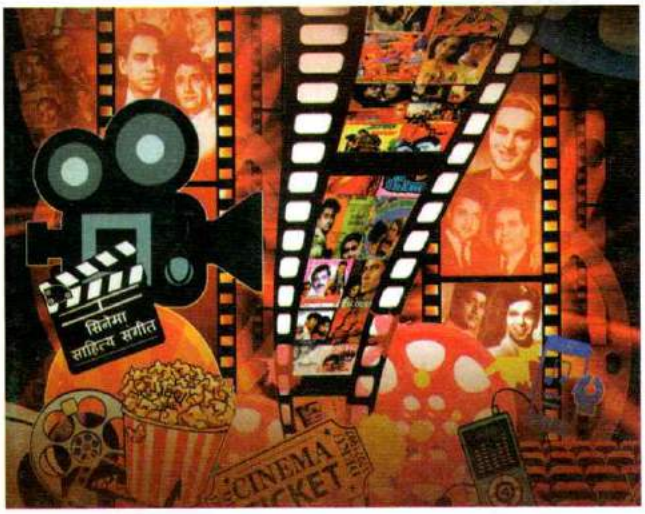

1872 में गिरीश चन्द्र घोष ने किया। घोष ने उसी वर्ष 'नेशनल थिएटर' की स्थापना की थी और बांग्ला भाषा में प्रथम व्यावसायिक स्तर पर मंचित, उस समय विवादास्पद लेकिन अत्यंत मार्मिक नाटक 'नील दर्पण' था।

इसके अगले दौर में, रवीन्द्रनाथ टैगोर ने अपने नाटकों के ज़रिए आध्यात्मिकता और व्यक्ति की निजी पहचान के साथ-साथ राष्ट्रवाद की सामूहिक दृष्टि का संदेश देने का प्रयास किया। उनके ऐसे कुछ नाटक थे - चित्रांगदा (1892), राजा (1910), डाकघर (1913) और रक्तकरबी (1924)। नील दर्पण की लोकप्रियता ब्रिटिश अधिकारियों को रास नहीं आई और उन्होंने इसके मंचन को प्रतिबंधित कर दिया। 1876 में एक अध्यादेश जारी किया गया जिसके अंतर्गत ब्रिटिश सरकार बंगाल में किसी भी नाटक के प्रदर्शन पर प्रतिबंध लगा सकती थी जो सरकार की राय में कुत्सित, किसी को बदनाम करने वाला, राजद्रोह भड़काने वाला, अश्लील अथवा अन्य किसी रूप में जन-हित के प्रतिकूल हो। कुछ ही दिनों में बंगाली रंगमंच में क्रॉंतिकारी भावनाओं पर प्रतिबंध लगाने के लिए ड्रामेटिक परफोर्मेंस एक्ट, 1876 लागू हो गया। नील दर्पण के मंचन के बाद राष्ट्रवादी नाटकों की जो बाढ़ आ गई थी, उन पर इस क़ानून के लागू होने के बाद रोक लग गई और अब ऐसे नाटकों का लिखा जाना और मंचित होना दुर्लभ-सा हो गया क्योंकि पुलिस की धरपकड़ बढ़ गई थी और ऐसे नाटकों के मंचन पर सख्त सजा का प्रावधान था। सरकारी प्रतिबंधों से बचने के लिए, नाटककारों ने अपने राष्ट्रवादी विचारों के प्रचार-प्रसार के लिए पौराणिक-मिथकीय नाटक करने शुरू किए। दिलचस्प बात यह है कि ब्रिटिश अधिकारियों ने खुले तौर पर 'स्वदेशी' नाटकों पर तो सख्ती बरती लेकिन पौराणिक-मिथकीय नाटकों पर कार्रवाई नहीं की।

सरकारी प्रतिबंधों से बचने के लिए, नाटककारों ने अपने राष्ट्रवादी विचारों के प्रचार-प्रसार के लिए पौराणिक-मिथकीय नाटक करने शुरू किए। दिलचस्प बात यह है कि ब्रिटिश अधिकारियों ने खुले तौर पर 'स्वदेशी' नाटकों पर तो सख्ती बरती लेकिन पौराणिक-मिथकीय नाटकों पर कार्रवाई नहीं की।

19वीं शताब्दी के अंत और 20वीं शताब्दी के प्रारम्भ में, 'स्वदेशी' आंदोलन के दौर में बांग्ला रंगमंच अतीत का गौरव-गान करने लगा। 1905 में बंगाल के विभाजन के लॉर्डकर्ज़न के फैसले से बंगाल में राष्ट्रवाद की प्रखर चेतना फैल गई। 1905 से पहले भी, कर्ज़न की 'फूट डालो और राज करो' की नीति ने बंगालियों को गुस्से से भर दिया था। 1903 में क्षिरोद प्रसाद विद्याविनोद ने अपने नाटक 'प्रतापादित्य' का कथानायक जैसोर (अब बांग्लादेश में) का ऐसा वीर जमींदार है जिसने मुग़लों के खिलाफ संघर्ष किया। इस कहानी के ज़रिए राष्ट्रवादी भावनाओं को अभिव्यक्त किया। धार्मिक एकता के साथ विदेशी शासन से मुक्ति की भावना को बढ़ावा देने वाले नाटक लिखे जाने लगे। जनवरी 1906 में ही, कलकत्ता के दो प्रमुख थिएटरों- स्टार और मिनर्वा में क्षिरोद प्रसाद विद्याविनोद का नाटक 'पद्मिनी', द्विजेंद्र लाल रॉय का नाटक 'राणा प्रताप सिंह', अमृतलाल बसु का नाटक 'शाबाश बंगाली', गिरीश घोष का नाटक 'सिराजुद्दौला' और हरनाथबोस का नाटक 'जागरण' प्रदर्शित किए जा रहे थे। राजपूत नायकों के प्रभाव ने बांग्ला नाटकों को ही नहीं, बल्कि अन्य विधाओं को भी प्रेरित किया। द्विजेन्द्र लाल रॉय के नाटक 'शाहजहाँ' का गीत 'धन धान्येपुश्पेभोरा' आज भी देशभक्ति का अत्यंत लोकप्रिय गीत है। 6 सितंबर 1906 को स्टार थिएटर में, जहाँ उस समय 'राणा प्रताप सिंह' का मंचन किया जा रहा था, बंग-भंग का शोक मनाते हुए नाटक का प्रदर्शन किया गया।

प्रोसेन्थियम थिएटर के मुक्ताकाशी लोक-स्वरूप 'जात्रा' में भी देशभक्ति की लहर फैल गई। चारण कवि मुकुंद दास (मूल नाम यज्ञेश्वरडे) इस विधा में सबसे अधिक लोकप्रिय थे। 'जात्रा' के विषय पौराणिक विषयों से जुड़े होते थे। जब राष्ट्रभक्ति के मुद्दों पर जनसभाएँ आयोजित करने पर पाबंदियाँ थीं, मुकुंद दास ने अपनी 'जात्राओं' से 'स्वदेशी' की भावना का प्रसार किया। 'जात्राएं' आम जनों में बहुत लोकप्रिय थीं। मुकुंद दास की प्रस्तुतियाँ भी खूब लोकप्रिय हुईं। इन 'जात्राओं' के चरित्र एकदम भले या एकदम बुरे होते थे। ब्रिटिश लोगों को 'बुरे' और क्रॉंतिकारियों को 'भले' चरित्रों के रूप में दिखाया जाता था। मुकुंद दास आज के बांग्लादेश के निवासी थे लेकिन उनके नाटक समूचे अविभाजित बंगाल में लोकप्रिय थे। जल्दी ही उनकी गतिविधियों को देशद्रोह-पूर्ण माना जाने लगा और उन्हें, खास तौर से उनके गीत 'चिलौधानगोला भरा। श्वेत इंदुरकोरलो सारा' (भंडार धान से भरा था; सफ़ेद चूहा सब कुतर गया) के लिए, जेल की सज़ा हुई। 'सफ़ेद चूहे' अँग्रेज़ ही थे। स्वदेशी आंदोलन के बाद भी, 1920 के दशक के प्रारम्भ के असहयोग आंदोलन में भी मुकुंद दास के गीत खूब लोकप्रिय हुए।

1876 में ड्रामेटिक परफ़ोर्मेंसेस एक्ट को लागू करने के बाद, ब्रिटिश शासकों को जल्दी समझ में आ गया था कि सिनेमा में लोगों की राय पर असर डालने की ज्यादा बड़ी क्षमता है। इसीलिए प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति के दौर में, 1918 में इंडियन सिनेमेटोग्राफ एक्ट पारित किया गया जो 1 अगस्त 1920 से लागू हो गया। यह ब्रिटिश सिनेमेटोग्राफ एक्ट 1909 पर आधारित था लेकिन भारतीय क़ानून का असली मकसद भारत में सार्वजनिक प्रदर्शन के लिए दिखाई जाने वाली फिल्मों को सेंसर करने का था। फिल्म-निर्माण शुरू से ही काफी

महंगा रहा है। बीसवीं सदी के प्रारम्भ से ही विभिन्न कला-रूपों में देशभक्ति की भावना की जो अभिव्यक्ति हुई है, उसी परिप्रेक्ष्य में हम देश के स्वाधीनता संघर्ष में बंगाली सिनेमा की भूमिका की पड़ताल करते हैं। 1931 में पहली सवाक फिल्म 'आलम आरा' के प्रदर्शन के बाद से, जहाँ बाकी भारत में मुख्य रूप से पौराणिक और ऐतिहासिक फिल्में बनीं, वहीं बंगाल में मूक फिल्मों के जमाने से ही बिलेतफेरात (1921) जैसी फिल्में बन रही थीं। दूसरे परिचित कला-रूपों की तुलना में, सिनेमा नया और गतिशील माध्यम था। मूक फिल्मों से सवाक फिल्मों तक का दौर भी अनिश्चितताओं और शंकाओं से भरा था। सिनेमा अब भी निरंतर बदलती तकनीकों और साज-सामान के लिए पश्चिमी देशों पर निर्भर है। इसलिए उस समय, बंगाली सिनेमा-निर्माताओं सहित पूरे भारतीय निर्माता स्वयं को बंधा हुआ पाते थे। प्रोपेगंडा के लिए सिनेमा के इस्तेमाल से केवल ब्रिटिश ही नहीं, अन्य लोग भी अवगत थे। 30 अक्तूबर से 1 नवंबर 1939 के दौरान, काँग्रेस के एक सम्मेलन में नेताजी सुभाष चन्द्र बोस ने फरीदपुर ज़िले (अब बांग्लादेश में) के सदस्यों को सिनेमा के प्रसार के लिए एक फिल्म कलैक्टिव बनने का सुझाव दिया था। उसी वर्ष, नेताजी की प्रेरणा से कला और सिनेमा को समर्पित 'रूपमंच' नाम की एक पत्रिका शुरू हुई थी। सिनेमा से जुड़ी यह बंगाल की आरंभिक पत्रिकाओं में एक थी।

सवाक् सिनेमा के शुरू होने के बाद बांग्ला सिनेमा ने शरतचंद्र चटर्जी, बंकिम चन्द्र चटर्जी और कभी-कभी रवीन्द्रनाथ टैगोर जैसे साहित्यकारों के समृद्ध बांग्ला साहित्य से प्रेरणा ली। कथानक के महत्व की इसी परम्परा की वजह से, आम बोलचाल में अब भी बंगाली लोग सिनेमा को 'बोइ' (पुस्तक) बोलते हैं।

सवाक सिनेमा के शुरू होने के बाद बांग्ला सिनेमा ने शरतचंद्र चटर्जी, बंकिम चन्द्र चटर्जी और कभी-कभी रवीन्द्रनाथ टैगोर जैसे साहित्यकारों के समृद्ध बांग्ला साहित्य से प्रेरणा ली। कथानक के महत्व की इसी परम्परा की वजह से, आम बोलचाल में अब भी बंगाली लोग सिनेमा को 'बोइ' (पुस्तक) बोलते हैं।

1930 के दशक में प्रथमेश बरुआ के साथ ही, बांग्ला सिनेमा में एक 'स्टार' का उदय हुआ। उनके चरित्रों की रोती-धोती भावुकता बंगाली भद्रलोक पर छा गई, हालांकि उनकी फिल्मों की अच्छी साहित्यिक पृष्ठभूमि भी होती थी। बीसवीं सदी में, बंगाल ने अनेक विपत्तियाँ देखीं। 1905 में बंग-भंग के अधूरे प्रयास के बाद, 1911 में देश की राजधानी कोलकाता से दिल्ली ले आई गई। मानवीय स्वार्थों और क्रूरताओं से पनपे 1942-43 के भीषण अकाल ने बंगालियों के आत्मविश्वास और भावनात्मक स्थिरता को झकझोर कर रख दिया। बिमलरॉय, ऋषिकेश मुखर्जी और अन्य अनेक प्रतिभाशाली निर्माता-निर्देशक ज्यादा स्थायित्व और जीवंतता की तलाश में कोलकाता से बंबई (अब मुंबई) आ गए। 1945 में समाप्त दूसरे विश्व युद्ध ने भी बंगाल और पूरे भारत में निराशा फैलाई। बाजार में पैसा नहीं रहा, काला बाजारियों का धंधा चमका। न्यूथिएटर्स जैसे प्रतिष्ठित फिल्म स्टूडिओ घाटा उठाकर बंद हो गए। पन्ना शाह की 1950 में प्रकाशित पुस्तक 'दि इंडियन फिल्म्स' के अनुसार, 1942 से 1945 के बीच, बांग्ला भाषा में प्रतिवर्ष 15 की तुलना में, मात्र 9 फिल्में ही आई। कोलकाता में बांग्ला ही नहीं, अन्य भाषाओं की फिल्में भी बनती थीं। समय के साथ, यहाँ से तमिल और उर्दू फिल्में बननी बंद हो गईं, लेकिन हिन्दी फिल्में बनती रहीं। महायुद्ध, अकाल और बंबई की ओर फ़िल्मकारों के पलायन से यहाँ का फिल्म उद्योग कमज़ोर होता गया। देश भर के फिल्म बाज़ार में बंबई फिल्म उद्योग का एकाधिकार हो गया। 1946 में, बाज़ार में अचानक पैसा आने से, बंबई फिल्म बाज़ार में नई तेजी आई और 1946 में वहाँ 150 (हिन्दी-143, गुजराती-1, मराठी, तमिल, तेलुगु-2 प्रत्येक) फिल्में बनीं, जबकि कलकत्ता में मात्र 23 (बांग्ला-15, हिन्दी-8) फिल्में बनीं। यह अंतर बढ़ता गया और देबकीबोस की दो भाषाओं में बनी सफल फिल्म 'चन्द्रशेखर' (1947) को छोड़ कर बांग्ला फिल्म उद्योग, धन की कमी से पस्त पड़ गया। यह अनुमान का विषय है कि अगर भारत की आज़ादी के साथ ही बंगाल का दुःखद विभाजन भी नहीं हुआ होता तो बांग्ला फिल्म उद्योग की स्थिति क्या होती। विभाजन ने मनोवैज्ञानिक पीड़ा के साथ-साथ, बांग्ला सिनेमा के घरेलू बाज़ार के आधार को ही हिला दिया।

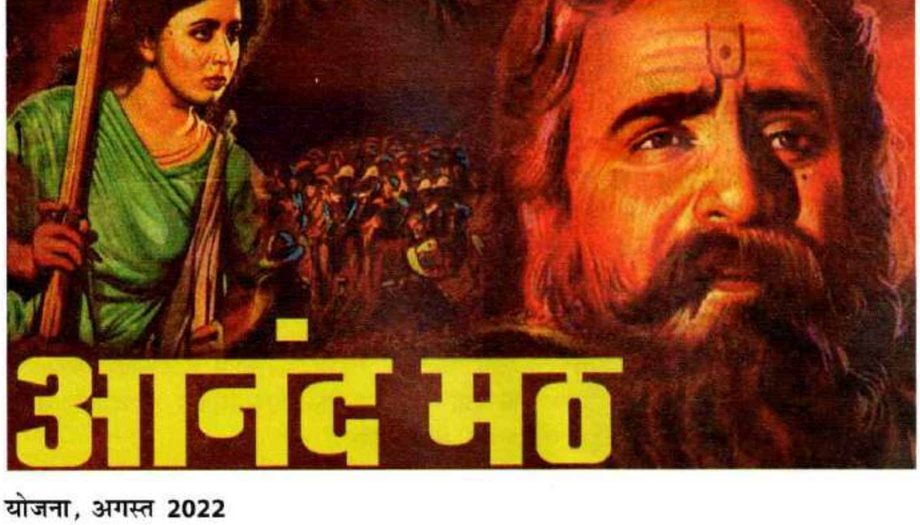

1930 और 1940 के दशकों में बांग्ला में सामाजिक जागरुकता वाली फिल्में बनीं लेकिन इन फिल्मों में ब्रिटिश साम्राज्यवाद और दमन की आलोचना प्रायः नहीं की गई। किरणमय राहा ने अपनी महत्वपूर्ण पुस्तक 'बंगाली सिनेमा' (1991) में इस प्रवृत्ति के बारे में लिखा है, "1930 के दशक में, अपनी देशभक्ति के लिए प्राणों की आहुति देने वाले क्राँतिकारियों को सराहा जाता था और उनका नाम घर-घर तक पहुँच गया था। 1942 में, 'भारत छोड़ो आंदोलन' चलाया गया जिसने नई सामाजिक धारणाएँ दीं और मज़दूर-किसानों की

Elite Academy For Education & Training Delhi

आकांक्षाओं को वाणी दी। लेकिन ऐसा लगता है कि बांग्ला सिनेमा ने इन घटनाओं पर कोई ध्यान नहीं दिया। भारत के सभी सामाजिक, कलात्मक और राजनीतिक आंदोलनों में आगे रहने वाले, सामाजिक और राजनीतिक रूप से सजग बंगाली समाज के लिए यह एक आश्चर्यजनक बात थी। फिल्मों के प्रतिबंधित हो जाने का खतरा निश्चित रूप से एक बड़ा कारण था लेकिन ऐसा कोई विश्वसनीय रिकॉर्ड नहीं मिलता कि नियमों-कानूनों से बचते हुए समय के अनुरूप संदेश देने वाली फिल्में बनाने का कोई प्रयास भी किया गया। सिनेमा एंड द इंडियन फ्रीडम स्ट्रगल (1998) पुस्तक में गौतम कौल ने इसी प्रवृत्ति के बारे में ज्यादा स्पष्ट रूप से लिखा है," राष्ट्रीय विषयों के प्रति बांग्ला सिनेमा की बहुत ही सीमित प्रतिक्रिया के अन्य कारण भी हो सकते हैं... मैं इसके पीछे बंगाली फाइनेंसरों की प्रवृत्ति को भी जिम्मेदार मानता हूँ जो रॉयल टर्फ क्लब में घोड़ों की रेस में दांव लगाने को तो तैयार रहते थे, लेकिन देश की स्वाधीनता से जुड़े विषयों पर आधारित फिल्मों में जोखिम उठाने को तैयार नहीं थे। उनका कारोबार ब्रिटिश प्रशासन से मिलने वाले ठेकों और सौदों पर टिका था और जो हाथ उन्हें रोज की रोटी दे रहे थे, उन्हें वे काटना नहीं चाहते थे। दूसरे, शायद बांग्ला राष्ट्रवाद राजनैतिक स्व-शासन से पहले समाज का आधुनिकीकरण और धार्मिक सुधार चाहता था। ऐसी प्रवृत्ति अन्य भारतीय भाषाओं के सिनेमा में भी प्रमुखता से नज़र आती है। फिर भी, इस सन्नाटे के बीच, देशभक्ति-पूर्ण फिल्में बनाने के कुछ प्रयास किए गए। सुशील मजूमदार ने सामाजिक मुद्दों के साथ-साथ समकालीन राजनीति को छूती कुछ फिल्में बनाईं, जैसे, 'मुक्तिस्नान' (1937), 'प्रतिशोध' (1941); और देश की आज़ादी के बाद- 'सोल्जर्स ड्रीम' (1948), 'सर्वहारा' (1948) और 'दुखीर ईमान' (1954) आदि। उनके अलावा, अर्धेंदु मुखर्जी की 'संग्राम' (1946), सुधीरबंधु बनर्जी की 'वंदेमातरम्' (1946) और आज़ादी पाने के पाँच महीने पहले बनी शरतचंद्रचटर्जी की कृति पर आधारित सतीशदास गुप्ता की फिल्म 'पाथेर दाबी' समकालीन राजनीतिक स्थिति को चित्रित करती कुछ फिल्में थीं।

दूसरी ओर, देश के आज़ाद होते ही, गुलामी के दौर के कष्टों को दिखाती अनेक फिल्में आईं। 'भूली नई' (1948, हेमेन गुप्त), 'जययात्रा' (1948, नीरेनलाहिड़ी), 'चट्टग्राम अस्त्रागार लुंठन' (1949, निर्मल चौधरी), 'बिप्लवी खुदीराम' (1951, हिरण्मय सेन), और 'बियालीश' (1951, हेमेन गुप्त) ऐसी कुछ फिल्में थीं जिसमें अब तक मज़बूरी में दबाए गए फ़िल्मकारों के आक्रोश की अभिव्यक्ति थी।

इनमें से 'भूली नई' 1905 में लॉर्डकर्ज़न द्वारा किए गए बंगाल-विभाजन पर आधारित थी, जबकि एक अध्यापक क्रौंतिकारी सूर्यसेन (जिन्हें प्यार से 'मास्टर दा' बोला जाता है) के नेतृत्व में 1930 में ब्रिटिश सरकार के चटगाँव शस्त्रागार से हथियार छीनने के असफल प्रयास की गाथा थी। 'बिप्लवी खुदीराम' में 30 अप्रैल 1908 को मुजफ्फरपुर बम कांड के सिलसिले में फाँसी पर चढ़ा दिए गए अत्यंत लोकप्रिय बंगाली क्रातिकारी किशोर खुदीरामबोस की गाथा चित्रित की गई थी। बियालीश फिल्म में 1942 के 'भारत छोड़ो आंदोलन' के दौर की बेचैनी का चित्रण था। इसमें बड़े कारुणिक तरीके से दिखाया गया था कि कैसे निरंकुश ब्रिटिश सत्ता के अधीन काम कर रहे एक भारतीय पुलिस अधिकारी ने साथी भारतीय स्वाधीनता सेनानियों की राष्ट्रवादी भावनाओं के साथ दगा किया। फिल्म भारत की आज़ादी के साथ समाप्त होती है और राष्ट्रीय क्रौंति के साथ दग़ाबाज़ी करने वालों की पहचान करने का आह्वान करती है। बंगाल के अग्रणी न्यूथिएटर्स स्टूडिओ ने सामाजिक जागरुकता के साथ-साथ राजनीतिक संदेश भी देने वाली फिल्में बनाईं। 1950 में न्यूथिएटर्स से बिमलरॉय की फिल्म 'पहला आदमी' आई। राष्ट्रीय स्तर पर दर्शकों को ध्यान में रखते हुए, इस हिन्दी फिल्म में नेताजी सुभाष चन्द्र बोस और उनकी आज़ाद हिन्द फौज की वीरता को चित्रित किया गया।

बियालीश फिल्म में 1942 के 'भारत छोड़ो आंदोलन' के दौर की बेचैनी का चित्रण था। इसमें बड़े कारुणिक तरीके से दिखाया गया था कि कैसे निरंकुश ब्रिटिश सत्ता के अधीन काम कर रहे एक भारतीय पुलिस अधिकारी ने साथी भारतीय स्वाधीनता सेनानियों की राष्ट्रवादी भावनाओं के साथ दगा किया। फिल्म भारत की आज़ादी के साथ समाप्त होती है और राष्ट्रीय क्रौंति के साथ दग़ाबाज़ी करने वालों की पहचान करने का आह्वान करती है।

यह समझना ज़रूरी है कि 'अर्धरात्रि को आई आज़ादी' का जैसा स्वागत बंबई और मद्रास (अब क्रमशः मुंबई और चेन्नई) के फिल्म-समुदाय द्वारा किया गया, वैसा स्वागत कलकत्ता (अब कोलकाता) में नहीं हुआ। वहाँ यह आम भावना रही कि स्वतंत्रता के साथ बंगाल का विभाजन भी मिला जिससे राष्ट्रीय संघर्ष का आदर्शवाद मंद पढ़ गया। दुर्भाग्य से, इस भावना को व्यक्त करती कुछ फिल्मों को सेंसर बोर्ड की नाराजी झेलनी पड़ी जिसे लगा कि अनेक नई कठिनाइयाँ झेल रहे नव-स्वतंत्र देश में ऐसी फिल्में किसी जन आंदोलन को जन्म दे सकती हैं। नेमि घोष की छिन्नमूल (1950) और बाद में ऋत्विक घटक की फिल्मों में विभाजन की त्रासदी व्यक्त हुई। बाद में समीक्षकों की सराहना पाने वाली ये फिल्में व्यावसायिक रूप से ज्यादा सफल नहीं हुईं क्योंकि शायद दर्शकों की इच्छा ऐसी फिल्में देखने की नहीं थी। पहले 1942-43 के अकाल के दौरान गाँवों से आए और फिर विभाजन के बाद पूर्वी बंगाल (आज का बांग्लादेश) से आए प्रवासियों से कलकत्ता भर गया था। उनके सीने में अपनों से बिछोह के घाव थे और सामने एक नए और कुछ हद तक असंवेदनशील समाज से जुड़ने की त्रासदी थी। यह जन-समूह एक नई पहचान मांग रहा था और इसीलिए, इस दौर में उत्तम कुमार और सुचित्रा सेन की ग्रामीण-शहरी जोड़ी सिनेमा के पर्दे पर छा गई। साथ ही, अनेक कॉमेडी फिल्में लोकप्रिय हुई क्योंकि रोज़मर्रा के कष्टों और विलाप के बाद, लोगों को हँसी-खुशी के मरहम की ज़रूरत थी।

बंगाली लोग भारत के स्वाधीनता संग्राम में हमेशा अग्रणी रहे। यह निश्चय ही दुर्भाग्यपूर्ण रहा कि बांग्ला सिनेमा, कथ्य और संख्या में, इस संग्राम की अभिव्यक्ति में पीछे रहा। ■

Elite Academy For Education & Training Pvt. Ltd. ★ Delhi ★

मध्य भारत में स्वतंत्रता संग्राम

डॉ सुशील त्रिवेदी

भारत का स्वतंत्रता आंदोलन एक ऐसा जन आंदोलन था जो जैसे-जैसे बढ़ता गया वैसे-वैसे उसकी शक्ति बढ़ती गई थी। यह आंदोलन प्रदेशों और वर्गों के भेदभाव से ऊपर उठकर पूरे देश की जनता की संयुक्त इच्छा शक्ति की अभिव्यक्ति बन गया था। 1857 के पहले भारत में अँग्रेज़ों के विरुद्ध आदिवासियों ने बार-बार विद्रोह किए थे और जिनके फलस्वरूप आदिवासी क्षेत्रों में अँग्रेज़ों को अपनी सत्ता स्थापित करने में बहुत संघर्ष करना पड़ा। ऐसे विद्रोहों का तो संदर्भ भी आसानी से नहीं मिलता है। यद्यपि पूरे देश भर में 1857 के पहले और उसके बाद हुए स्वतंत्रता आंदोलन में आदिवासियों का योगदान महत्वपूर्ण था।

स्वतंत्रता आंदोलन के इतिहास की जब चर्चा होती है तब 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के बाद से उसका विवरण दिया जाता है। उल्लेखनीय बात यह है कि हमारे इतिहास लेखन में स्वतंत्रता आंदोलन में कुछ प्रदेशों और वर्गों का उल्लेख बार-बार आता है किन्तु आदिवासी क्षेत्रों और आदिवासियों के योगदान को प्रायः अनदेखा कर दिया जाता है। यह और भी महत्वपूर्ण बिन्दु है कि 1857 के पहले भारत में अँग्रेज़ों के विरुद्ध आदिवासियों ने बार-बार विद्रोह किए थे और जिनके फलस्वरूप आदिवासी क्षेत्रों में अँग्रेज़ों को अपनी सत्ता स्थापित करने में बहुत संघर्ष करना पड़ा। ऐसे विद्रोहों का तो संदर्भ भी आसानी से नहीं मिलता है। यद्यपि पूरे देश भर में 1857 के पहले और उसके बाद हुए स्वतंत्रता आंदोलन में आदिवासियों का योगदान महत्वपूर्ण था तथापि हम यहाँ भारत के मध्य भाग में छत्तीसगढ़ में ही हुए ऐसे आंदोलनों की चर्चा कर रहे हैं।

1857 के पहले आठ आदिवासी विद्रोह

सन् 1757 में प्लासी के युद्ध को जीतने के बाद और 1765 में बंगाल, बिहार और ओडिशा की दीवानी हासिल करने के बाद ईस्ट इंडिया कंपनी ने छत्तीसगढ़ को अपने कब्जे में करने के प्रयास शुरू किए थे। छत्तीसगढ़ के मध्य भाग के अधिकांश क्षेत्र पर नागपुर के मराठा शासकों का अधिकार था और शेष क्षेत्रों में अलग-अलग देसी रियासतें थीं। अँग्रेज़ों को पहली सफलता सन् 1800 में मिली जब रायगढ़ के राजा ने कंपनी सरकार के साथ एक संधि कर रायगढ़ को कंपनी सरकार का हिस्सा बनाया। नागपुर में मराठा शासकों के साथ 1818 में हुए युद्ध में पराजय के बाद मराठा राज्य पर अँग्रेज़ों का कब्जा हो गया और इसके साथ ही छत्तीसगढ़ के मध्य क्षेत्र पर अँग्रेज़ शासन करने लगे। बहरहाल, छत्तीसगढ़ के दक्षिण में बस्तर तथा उत्तर में सरगुजा क्षेत्रों में आदिवासियों ने अपने

भूमकाल आंदोलन के महानायक अमर शहीद गुंडाधुर

लेखक सेवानिवृत्त आईएएस और पूर्व राज्य चुनाव आयुक्त हैं। ईमेल: drsushil.trivedi@gmail.com

राज्यों को कंपनी सरकार की गुलामी से बचाने के लिए अनेक विद्रोह किए थे।

इन विद्रोहों में सन् 1774 से लेकर 1779 तक हलबा आदिवासियों ने अँग्रेज़ों के विरुद्ध जो युद्ध किया था वह अत्यंत रोमांचक और रक्तरंजित था। बस्तर पर कब्जा करने के लिए अँग्रेज़ों ने जैपुर के राजा और बस्तर के राजा के छोटे भाई दरियावदेव सिंह को साथ लिया और एक सम्मिलित सेना बनाकर 1774 में बस्तर के राजा अजमेर सिंह पर आक्रमण किया। अजमेर सिंह की सेना में हलबा आदिवासी थे और उन्होंने अँग्रेज़ सेना को धूल चटा दी। यह युद्ध 1779 तक चला किन्तु अँग्रेज़ों को सफलता नहीं मिली। बाद में दरियावदेव सिंह ने धोखे से अजमेर सिंह का वध कर दिया। अजमेर सिंह की मृत्यु के बाद हलबा सेना नेतृत्व विहीन हो गई और तब अँग्रेज़ सेना ने बस्तर के हलबा आदिवासियों को चुन-चुनकर मार डाला। यह नरसंहार की इतनी बड़ी घटना थी कि जिसमें एक पूरी जाति का सफाया करने का तांडव किया गया। यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि अँग्रेज़ों के विरुद्ध पूरे भारत में किया जाने वाला यह पहला विद्रोह था और बस्तर के राजा अजमेर सिंह इसके पहले शहीद थे।

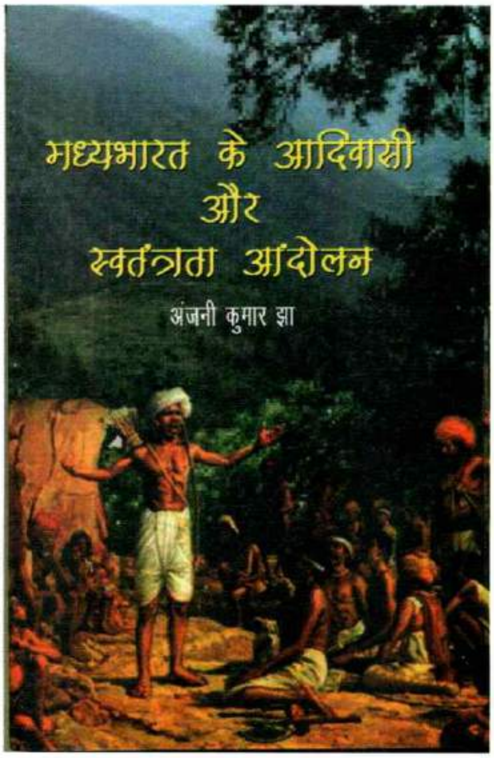

अँग्रेज़ों के विरुद्ध दूसरा विद्रोह 1792 में सरगुजा के अजीत सिंह ने किया था। अँग्रेज़ों ने सरगुजा पर कब्जा करने का षड्यंत्र किया किन्तु वे सफल नहीं हुए। उसके बाद अँग्रेज़ों ने मराठा सेना के साथ मिलकर अजीत सिंह पर आक्रमण किया। अजीत सिंह की आदिवासी सेना ने जमकर मोर्चा लिया। इस युद्ध में अजीत सिंह शहीद हो गए। अँग्रेज़ों के विरुद्ध तीसरा विद्रोह बस्तर के भोपालपटनम् में 1795 में हुआ। इस विद्रोह के ज़रिए बस्तर के शासक दरियावदेव के गोंड सैनिकों ने अँग्रेज़ों को बस्तर में प्रवेश करने से रोक दिया था। आदिवासी विद्रोह की कड़ी में चौथा विद्रोह परलकोट में हुआ था। उस समय परलकोट बस्तर शासकों का मुख्यालय था। बस्तर में अँग्रेज़ों को आने से रोकने के लिए गेंद सिंह के नेतृत्व में अबूझमाडिया आदिवासी ने संघर्ष किया। इस विद्रोह को दबाने के लिए चांदा से आधुनिक हथियार से युक्त अँग्रेज़ सेना आई। 10 जनवरी, 1825 को गेंद सिंह को गिरफ्तार कर उसके महल के सामने ही सरे आम फाँसी पर लटका दिया गया।

फिर पाँचवाँ विद्रोह दिसंबर, 1831 में छोटा नागपुर क्षेत्र में कोल आदिवासियों ने शुरू किया। आदिवासियों की भूमि को जबरदस्ती हथियाने के कारण उपजे असंतोष से इस विद्रोह का सूत्रपात हुआ था। यह विद्रोह 1932 तक चला और फिर इसे अँग्रेज़ों ने एक बड़ी सेना लाकर दबा दिया। इसके बाद छठा विद्रोह 1833 में हुआ, जब अँग्रेज़ बड़गढ़ पर कब्जा करना चाहते थे। बडगढ़ के राजा अजीत सिंह के नेतृत्व में रायगढ़ के आदिवासियों ने अँग्रेज़ सेना का जमकर विरोध किया। इस संघर्ष में अजीत सिंह वीरगति को प्राप्त हुए।

तदुपरांत सातवाँ विद्रोह बस्तर क्षेत्र में 1842 में तारापुर में हुआ। तारापुर में बस्तर के शासक भूपलदेव का भाई दलगंजन सिंह तारापुर का प्रशासक था। दलगंजन सिंह ने अपने क्षेत्र में वार्षिक टैक्स बढ़ाना नामंजूर कर दिया। दलगंजन सिंह के इस व्यवहार को अँग्रेज़ों ने विद्रोह माना और उसे दबाने के लिए नागपुर से एक सेना भेजी। इस बीच क्षेत्र की आदिवासी जनता भी तैयार हो गई थी, और उसने दलगंजन सिंह के नेतृत्व में अँग्रेज़ों की सेना का सामना किया। युद्ध में दलगंजन सिंह पराजित हुआ और उसे जेल में डाल दिया गया। आठवां विद्रोह दक्षिण बस्तर में दंतेवाड़ा में नरबलि की प्रथा को लेकर अँग्रेज़ों के आदेश के विरुद्ध आदिवासियों ने 1842 में किया। इस विरोध को रोकने के लिए अँग्रेज़ों की सेना नागपुर से आई। इस सेना से आदिवासियों ने जमकर लोहा लिया। एक संघर्ष के बाद नरबलि प्रथा रुकी और दंतेवाड़ा में स्थायी सैनिक व्यवस्था कायम की गई।

अँग्रेज़ों द्वारा लगान वसूली के लिए की गई नई व्यवस्था, परपंरागत सामाजिक, धार्मिक और राज व्यवस्था को बदलने के प्रयासों, वनप्रबंधन के लिए लागू किए गए नये नियमों और मदिरा के निर्माण पर लगाई गई रोको के कारण आदिवासियों की जल, जंगल और जमीन की अपनी अनूठी संस्कृति प्रभावित हो रही थी। अँग्रेज़ों द्वारा इन उपायों का सहारा लेकर आदिवासियों की स्वाधीन चेतना को भी आहत किया गया था। इस तरह आदिवासियों ने अपनी संस्कृति और स्वायत्तता की रक्षा के लिए ये विद्रोह किए थे जो छत्तीसगढ़ में अँग्रेज़ों के विरुद्ध स्वतंत्रता संग्राम की ऐतिहासिक विरासत हैं। भारत के इतिहास में 1857 के पहले छत्तीसगढ़ के आदिवासियों के द्वारा किए गए इन आठ विद्रोह का कोई उल्लेख नहीं मिलता किन्तु ये विद्रोह अँग्रेज़ों के विरुद्ध आदिवासियों के अथक और क्राँतिकारी संघर्ष का प्रमाण देते हैं।

अँग्रेज़ों द्वारा लगान वसूली के लिए की गई नई व्यवस्था, परपंरागत सामाजिक, धार्मिक और राज व्यवस्था को बदलने के प्रयासों, वनप्रबंधन के लिए लागू किए गए नये नियमों और मदिरा के निर्माण पर लगाई गई रोको के कारण आदिवासियों की जल, जंगल और जमीन की अपनी अनूठी संस्कृति प्रभावित हो रही थी।

1857 का पहला विद्रोह सोनाखान में

सन् 1857 में रायपुर के सोनाखान के आदिवासी जमींदार नारायण सिंह ने अद्‌भुत

छत्तीसगढ़ के उत्तर-पूर्व में 1916 में ताना भगत आंदोलन शुरू किया गया जो 1918 तक चला। यह आंदोलन पहले हिंसक था किन्तु बाद में इस आंदोलन के अनुयायी अहिंसक असहयोग आंदोलन करने लगे और भारत के मुख्यधारा के स्वतंत्रता आंदोलन का हिस्सा बन गया।

विद्रोह किया था। उनकी जमींदारी वाले क्षेत्र में सूखा पड़ गया था और नारायण सिंह ने अपनी जनता को भूख से काल कवलित होने से बचाने के लिए एक साहूकार के यहाँ जमा किया गया धान निकलवा कर बंटवा दिया था। नारायण सिंह ने इसकी सूचना रायपुर में तैनात अँग्रेज़ अधिकारियों को दी थी। और उधर साहूकार ने नारायण सिंह के कृत्य को लूट और डकैती बताते हुए अँग्रेज़ अधिकारियों से शिकायत की। अँग्रेज़ों ने सूखे से जनता को बचाने के लिए कोई प्रशासनिक उपाय नहीं किया किन्तु जमाखोर साहूकार की शिकायत के आधार पर आत्मसम्मानी नारायण सिंह को गिरफ्तार कर रायपुर जेल में बंदी बनाकर डाल लिया। नारायण सिंह रायपुर में तैनात अँग्रेज़ों की देसी पैदल सेना के सहयोग से जेल से भागने में सफल हुए और सोनखान पहुँच कर उन्होंने आदिवासी युवकों की सेना तैयार की। अँग्रेज़ों ने नारायण सिंह को गिरफ्तार करने के लिए एक बड़ी सेना को सोनाखान भेजी। कड़े संघर्ष के बाद नारायण सिंह को गिरफ्तार कर लिया गया और उन्हें 10 दिसंबर, 1857 को रायपुर में सार्वजनिक रूप से फाँसी दे दी गई। नारायण सिंह को स्वतंत्र भारत में 'वीर' की उपाधि से सम्मानित कर छत्तीसगढ़ में 1857 का प्रथम शहीद घोषित किया गया हैं।

रायपुर में देसी पैदल सेना का विद्रोह

नारायण सिंह को फाँसी देने के विरोध में रायपुर में तैनात अँग्रेज़ों की देसी पैदल सेना ने 18 जनवरी, 1858 को विद्रोह कर दिया। पैदल सेना के मैगजीन लश्कर हनुमान सिंह ने एक अँग्रेज़ सार्जेंट मेजर पर हमला कर दिया। इस हमले में सार्जेंट मेजर की मृत्यु हो गई। यह विद्रोह लम्बा नहीं चल सका और अँग्रेज़ों द्वारा की गई एक बड़ी कार्रवाई में पैदल सेना के 17 लोगों को गिरफ्तार कर 22 जनवरी, 1858 को नागरिकों के समक्ष फाँसी दे दी गई।

फिर-फिर आदिवासी विद्रोह

सन् 1858 में रायगढ़ ज़िले के उदयपुर में आदिवासियों ने विद्रोह किया। इस विद्रोह के फलस्वरूप उदयपुर के नरेश के भाइयों को गिरफ्तार कर अण्डमान की जेल में भेज दिया गया। बस्तर के मुरिया आदिवासियों ने 1876 में विद्रोह किया। इस विद्रोह को दबाने के लिए अँग्रेज़ों की एक बड़ी सेना ओडिशा क्षेत्र से भेजी गई और कोई एक माह की घेरा बंदी के बाद अँग्रेज़ों को सफलता मिली। इसके बाद 1878 में बस्तर की रानी ने अपने अधिकारों की रक्षा के लिए अँग्रेज़ों के विरुद्ध संघर्ष शुरू किया जो 1882 तक चला। इस विद्रोह के फलस्वरूप नारी अस्मिता की रक्षा हुई और अँग्रेज़ सरकार को रानी के समक्ष झुकना पड़ा।

बस्तर का भुमकाल

बस्तर में ही सन् 1910 में एक जबरदस्त विद्रोह हुआ जिसे आधुनिक इतिहास में 'बस्तर का भुमकाल' के नाम से जाना जाता है। बस्तर के मुरिया आदिवासियों ने ब्रिटिश राज्य को नेस्तनाबूद कर 'मुरिया राज' की स्थापना के लिए सशस्त्र क्राँति की जिसकी अगुआई गुंडाधुर ने की थी। यह विद्रोह अत्यंत विस्तृत योजना बनाकर किया गया था जिससे पूरे बस्तर में भूचाल सरीखा आ गया। आदिवासियों ने अँग्रेज़ों को निशाना बनाया और सरकारी इमारतों पर आक्रमण किया। 1 फरवरी, 1910 को शुरू हुए इस विद्रोह की अग्नि तीन माह तक धधकती रही। शुरू में कुछ समय तक पूरे बस्तर में मुरिया राज स्थापित हो गया किन्तु अँग्रेज़ों की एक बड़ी सेना के विरुद्ध गुंडाधुर की सेना टिक नहीं सकी। इस संघर्ष में सैकड़ों आदिवासी मौत के घाट उतार दिए गए और हज़ारों को कठोर दण्ड भुगतना पड़ा।

छत्तीसगढ़ के उत्तर-पूर्व में 1916 में ताना भगत आंदोलन शुरू किया गया जो 1918 तक चला। यह आंदोलन पहले हिंसक था किन्तु बाद में इस आंदोलन के अनुयायी अहिंसक असहयोग आंदोलन करने लगे और भारत की स्वतंत्रता आंदोलन का हिस्सा बन गया।

जंगल सत्याग्रह

छत्तीसगढ़ का एक और आंदोलन-1922 में धमतरी ज़िले के नगरी में हुआ जंगल सत्याग्रह- पूरे स्वतंत्रता संग्राम में अनूठी पहचान रखता है। आदिवासियों ने वन विभाग द्वारा कम मज़दूरी देने और घर पर चूल्हे में जलाने के लिए लकड़ी ले जाने पर लगे प्रतिबंध को लेकर अधिकारियों के विरुद्ध सत्याग्रह किया था। इस आंदोलन में बड़ी गिरफ्तारियाँ हुई और सत्याग्रहियों को सज़ा दी गई। बाद में वन विभाग ने कार्यप्रणाली सुधारी और यह आंदोलन बंद किया गया। किन्तु अगस्त, 1930 में फिर पूरे छत्तीसगढ़ में जगह-जगह पर जंगल सत्याग्रह शुरू हुआ। इस सत्याग्रह के तहत तमेरा नामक स्थान पर हज़ारों की भीड़ इकठ्ठा हुई और भीड़ को जब रोकने का प्रयास किया तो एक महिला दयावती ने अधिकारी को चांटा मारा। स्थिति को अधिकारियों ने बिगड़ने से बचा लिया। कुछ लोग गिरफ्तार हुए। एक स्थान पर पुलिस ने गोली चलाई, जिसमें एक आदिवासी की मृत्यु हुई। यह आंदोलन मार्च, 1931 तक चलता रहा और भारत में सविनय अवज्ञा आंदोलन की वापसी के साथ यह आंदोलन बंद हुआ।

स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास केवल घटनाओं का विवरण देना या प्रसंगों की गिनती करना मात्र नहीं है। स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास उसके नायकों का चरित्र विवरण देना भी नहीं है। स्वतंत्रता आंदोलन वास्तव में उन धाराओं और प्रतिरोधी धाराओं का विश्लेषण करना है जिनसे उस समय के क्षुब्ध समाज की संरचना बनी थीं। जनता के मन और मस्तिष्क में स्वतंत्र होने के लिए आंतरिक चेतना थी और जिसकी अभिव्यक्ति संघर्ष के रूप में हो रही थी, उस चेतना और उसकी अभिव्यक्ति की पहचान आवश्यक है। यह पहचान करते हुए, इतिहासकारों द्वारा मुख्य केन्द्रों से दूर क्षेत्रों और आम लोगों की – विशेषकर आदिवासियों की – स्वतंत्रता की चेतना को प्रायः ध्यान में नहीं लिया गया है। भारत के स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास इस आदिवासी चेतना की स्वीकृति के बिना अधूरा ही है। ■

Elite Academy For Education & Training Pvt. Ltd. ★Delhi★

पूर्वोत्तर से आज़ादी के तराने

डॉ समुद्र गुप्त कश्यप

भारत के पूर्वोत्तर क्षेत्रों में बर्मी आक्रमणकारियों के साथ यन्दाबो संधि के बाद क्षेत्र पर अँग्रेज़ों द्वारा कब्जा जमाने की मंशा के साथ ही स्वतंत्रता आंदोलन का आरम्भ हो गया था। इससे पहले, असम और मणिपुर पर 1817, 1819 और 1821 में बर्मी लड़ाकों ने तीन बार हमला कर इन स्वतंत्र देशों पर कब्जा किया था। बर्मी सेनाओं को निकालने का वादा कर वहाँ पहुँचे अँग्रेज़, चाय और पेट्रोलियम के लालच में वहाँ रुक गए थे। क्षेत्र के अधिकांशतः पहाड़ी और मैदानी लोगों के बीच साक्षरता दर कम थी और सामाजिक संदेशों के आदान-प्रदान का एकमात्र तरीका था मौखिक शब्द या साहित्य।

विभिन्न शैली के लोक गीत सूचनाओं को दूर-दराज फैलाते हैं तथा स्वतंत्रता-प्रेमी और देशभक्त लोग उनके वीरतापूर्ण एवं बलिदान के किस्सों से जुड़े गीत गाते हैं। इन गीतों की रचना और उन्हें गाने वालों के जाने के बाद, इन्हें दर्ज ना किए जाने के कारण ऐसे कई गीत एवं कविताएँ इतिहास में लुप्त हो जाते हैं। परन्तु उनमें से कुछ को गिने-चुने अध्येताओं ने एकत्र कर संरक्षित कर लिया है।

''खामती, नागाती, गारो, खसिअती,
लागातेदाफ्ला मिरि
रंग-चिलाहाबिते बार-मेलपतिसे,
फिरिंगीकधारोंगोइबुली।
बार-नोआर पनियेपथारखांबुराले,
खारालियाहुधानबाम,
फिरिंगीखेदोंतेमारोजादिमारिमे,
कलालोखियातिपाम।''

(खमती, नागा, गारो, खासी, डाफला और मिरि – क्षेत्र के विभिन्न जनजातीय समुदायों ने, विदेशियों को पकड़ने के लिए रंगचिला वन में एक विशाल बैठक की। बड़ी नदी की बाढ़ ने धान के खेतों को डुबो दिया है। चिंता ना करें, हम शरद में अहु-धान (ऊँची भूमि की धान) लगाएँगे। यदि विदेशियों को भगाते समय हम मारे गए, तो हम सदा के लिए अमर हो जाएँगे।)

1830 के दशक से असम में मौखिक कविता वाचन से अँग्रेज़ों के खिलाफ संघर्ष का संदेश फैलना शुरू हुआ था। 1826 में बर्मा के हमलावरों के साथ यंदाबो संधि के आधार पर अँग्रेज़ों ने मौजूदा पूर्वोत्तर का अतिक्रमण आरम्भ कर दिया था। इससे पहले, 1817, 1819 और 1821 में हमला कर के बर्मी लड़ाकों ने असम और मणिपुर पर हमला कर लिया था। उससे पहले यह दोनों आज़ाद देश थे। अँग्रेज़, जो बर्मी लड़ाकों को भगाने के बाद वहाँ से चले जाने का वादा कर के आए थे, चाय और तेल की खोज होने के बाद वहीं रुक गए।

उस दौरान असमियों और मणिपुरियों में साक्षरता दर बेहद कम थी। दूसरी ओर, अधिकांश अन्य समुदायों की अपनी कोई लिपि भी नहीं थी। लिहाजा, क्षेत्र के पर्वतीय और मैदानी लोगों के लिए, सामाजिक संदेश प्रेषण के लिए, वाचिक शब्द यानी मौखिक साहित्य ही एकमात्र साधन था।

असम का पहला आंदोलन 1928 में आसानी से कुचल दिया गया था और उसके नेता गोंधार कंवर को बंगाल के एक कारागार में भेजा गया जहाँ उनकी मृत्यु हो गई थी। दूसरे विद्रोह के नेता पियोली फुकन

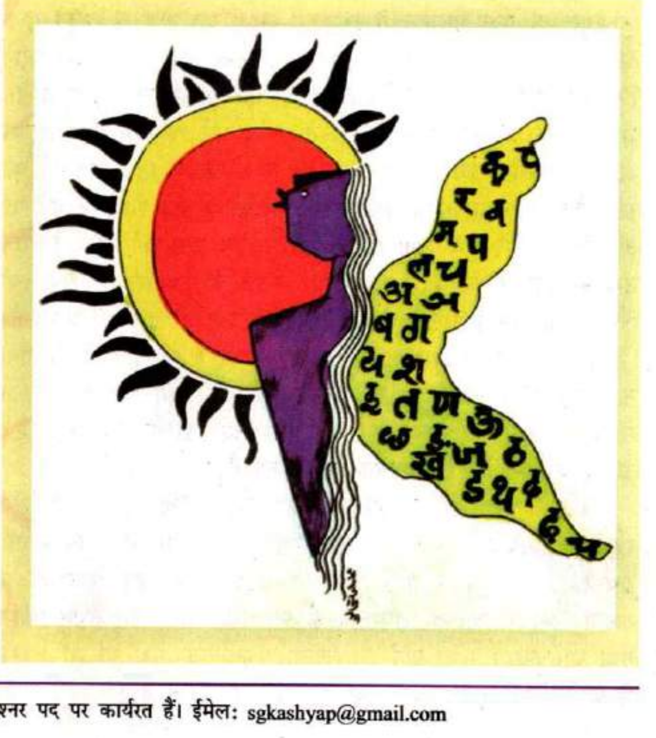

लेखक गुवाहाटी स्थित वरिष्ठ पत्रकार हैं और इस समय असम के राज्य सूचना कमिश्नर पद पर कार्यरत हैं। ईमेल: sgkashyap@gmail.com

और जियुराम दुलिया बरुआ को 1830 में फाँसी हुई थी। इसके बावजूद, उनकी वीरता और बलिदान के किस्से दूर-दूर तक फैले और स्वतंत्रता प्रेमी तथा देशभक्त लोगों ने उनके गीत गाने शुरू कर दिए थे।

असम के 1857 के महानतम नायक, मणिराम दीवान को फरवरी 1858 में फाँसी पर लटका दिया गया था। परन्तु लोगों द्वारा गाए जाने वाले लोकगीत और गाथागीतों का असर इतना गहरा था कि हर गुजरते वर्ष के साथ रफ्तार पकड़ते स्वतंत्रता संघर्ष से उनका रिश्ता अटूट हो गया था। एक बीहू गीत में मणिराम को असमियों के लिए बीहू जैसा ही प्रिय बताया गया है, जबकि एक गाथागीत में उनके राष्ट्रभक्ति के कार्यों, चाय उद्योग में उनके योगदान, उनकी कोलकाता यात्रा, अँग्रेज़ों को बाहर करने की उनकी नीति, उनकी शहादत और भी बातों का उल्लेख आता है। इस गाथागीत को 'मणिराम दीवानार मलिता' नाम दिया गया है – मलिता अर्थात् गाथागीत। स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान यह प्रेरणादायक गीत बन गए थे। स्वतंत्रता उपरांत 1963 की एक असमिया फिल्म 'मणिराम दीवान' में भूपेन हज़ारिका ने उस गाथागीत का एक हिस्सा गाया था।

28 जनवरी को दरांग ज़िले का पठारुघाट नरसंहार भी था, जिसमें पुलिस गोलीबारी से 36 से 140 के बीच किसान और अन्य लोग मारे गए थे। इस पर भी अनेक लोकगीत रचे गए। इनमें सबसे उल्लेखनीय 132 पंक्तियों का गाथागीत 'डोलीपुराण' है, जिसकी रचना पुराणों की शैली में की गई और इसका श्रेय एक स्थानीय ग्रामीण नरोत्तम दास को जाता है।

इसी तरह, फुलागुरी धेवा (अक्तूबर 1861; धेवा का अर्थ स्थानीय बोली में लड़ाई या युद्ध है) थी – ब्रिटिश शासन के खिलाफ भारत का पहला कृषक विद्रोह था। मध्य असम के नगाँव ज़िले में उभरे इस विद्रोह ने स्थानीय ग्रामीणों को लोकगीत रचने की प्रेरणा दी थी। इन गीतों में उस विद्रोह का उल्लेख आता है जिसकी परिणति पुलिस गोलीबारी में अनेक किसानों के मारे जाने पर हुई थी, जबकि कई अन्य को अंडमान भेज दिया गया था। स्थानीय इतिहास के अनुसार, अंडमान में सज़ा काटने के बाद, बहू कैवर्त नामक फुलागुरी के एक किसान ने लौटकर घटना का उल्लेख करने वाले अनेक गीतों को रचा और गाया था। इसी तरह, 28 जनवरी को दरांग ज़िले का पठारुघाट नरसंहार भी था, जिसमें पुलिस गोलीबारी से 36 से 140 के बीच किसान और अन्य लोग मारे गए थे। इस पर भी अनेक लोकगीत रचे गए। इनमें सबसे उल्लेखनीय 132 पंक्तियों का गाथागीत 'डोलीपुराण' है, जिसकी रचना पुराणों की शैली में की गई और इसका श्रेय एक स्थानीय ग्रामीण नरोत्तम दास को जाता है। वह उस नरसंहार के चश्मदीद गवाह थे। घटना को 'पठारुघाटर रण' के तौर पर याद किया जाता है, वहीं गाथागीत को 'डोलीपुराण' कहते हैं। 'डोली' का तात्पर्य सूखी मिट्टी के ढेलों से है जो निहत्थे किसानों ने अपनी बंदूकें तैयार कर रहे पुलिसवालों पर फेंकी थी। दरांग ज़िले में परवर्ती स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान गाए गए 'डोलीपुराण' को आज असम का महत्वपूर्ण गाथागीत माना जाता है।

बीसवीं सदी में असम में साहित्यिक गतिविधियाँ का श्रेय स्वतंत्रता संघर्ष को जाता है। सबसे पहला गीत 1916 में अम्बिकागिरि रायचौधरी (असम केसरी) ने रिकॉर्ड किया था। इसे गुवाहाटी में असम सभा के वार्षिक सम्मेलन के प्रारंभिक कोरस हेतु तैयार किया गया था। असम सभा प्रांत का पहला राजनीतिक मंच था जो 1921 में प्रांतीय काँग्रेस में बदल गया था। गीत इस तरह है :

Academy For Education & Training * Delhi *

''ए-ही तोमारबानी, भारत,
ए-ही तोमारदान,
तोमार होके जीवन-धरन,
तोमार होके प्राण।''

(यही तुम्हारा संदेश, भारत, यही तुम्हारा दान/हम तुम्हारे लिए जीते हैं, तुम्हारे लिए ही हमारा जीवन है)।

1917 में रायचौधरी ने बरपेता के असम सभा सम्मेलन में ''ई-जे अग्नि-वीनार्तान'' (अग्नि वीणा की धुन) गाया था, जिसमें वह कहते हैं, ''यह उल्लास, आनंद और आराम का गीत नहीं/यह अग्नि वीणा की धुन है जिसने जीवन और मृत्यु को एक बना दिया है।'' समूचे असम में रायचौधरी के गीतों का असर इतना गहरा था कि सरकार ने 1924 में क्राँतिकारी कथ्य के कारण उनकी पुस्तक 'शताध' को ज़ब्त कर दिया था।

1921 को महात्मा गाँधी की पहली असम यात्रा के दौरान, रायचौधरी और करमवीर नबीन चंद्र बरदलै ने उनके साथ गुज़ारे एक सत्र में उन्हें बताया कि कैसे दोनों द्वारा रचे गए संगीतबद्ध गीत बरसों से प्रांत भर में आज़ादी और अहिंसा का संदेश फैला रहे हैं। 1926 में, भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस के 41वें सत्र का आरम्भ, रायचौधरी द्वारा संगीतबद्ध ''अजी बंधो किचन्धरे/समागतविरत/नरनारायणरूप'' ('हम कैसे आपका स्वागत करें, मानवीयता के प्रखर अवतार? हम संकुचित दिल और दिमाग़ वाले अपमानित और आश्रित लोग हैं/हमारे पास फूल, चंदन का तिलक और धूपबत्तियाँ नहीं हैं.../दासता की बेड़ी से घुटी हमारी आवाज़/हम धुन नहीं निकाल सकते...')

1920 से 1940 के दशक के स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में असम में अनेक गीत और कविताएँ रची गई थी। जहाँ रायचौधरी इस अभियान को गीतों और कविताओं के माध्यम से करमवीर गति प्रदान कर रहे थे, वहीं नबीन चंद्र बोरदोलोई, उमेश चंद्र चौधरी, परबती प्रसाद बरुआ, नलिनी बाला देवी, प्रसन्नलाल चौधरी, पद्माधर छलिहा, अग्नि-कवि कमलकांत भट्टाचार्य, गणेश गोगोई, शंकर बरुआ, आनंदिराम दास, बिष्णु प्रसाद राभा और ज्योति प्रसाद अगरवाला जैसे प्रतिष्ठित नेताओं ने भी इस शैली में अपना योगदान दिया था।

नबीन चंद्र बोरदोलोई के अनेक गीतों में से 'आह्वान' बहुत लोकप्रिय था। इसकी आरंभिक पंक्तियाँ हैं – ''देका-गभरुर डल/वीर-वीरांगनार डल/नतुंतेजीरेरंगोलिरुपही/कर-ही धरनिताल'' (युवा पुरुषों और स्त्रियों के समूह, साहसी युवा लोगों के समूह/आओ, अपने युवा रक्त से इस भूमि को रक्तिम कर दो।)

एक कवि जिनके गीतों और कविताओं ने असम में लाखों दिलों में तूफान ला दिया था, वह थे ज्योति प्रसाद अगरवाला (1903–1951)। आज़ादी के 75 वर्ष बीतने के बाद भी उनके गीत लोगों को प्रेरित करते हैं। ज्योति प्रसाद एक कवि, गीतकार, गायक, संगीतकार, नाटककार और अग्रणी असमिया फिल्मकार थे। उन्हें आधुनिक असमिया संस्कृति का जनक कहा जाता है। वह स्वतंत्रता आंदोलन के उग्र नेता थे, जिन्होंने भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान काँग्रेस स्वयंसेवी दल की कमान संभाली थी। प्रखर कवि और गीतकार ज्योति प्रसाद ने क़रीब 400 कविताएँ और गीतों की

रचना की, जिनमें कम-से-कम 40 सीधे तौर पर स्वतंत्रता आंदोलन से सम्बंधित हैं।

उनका एक प्रसिद्ध गीत इस प्रकार है :

''बिस्व-बिजयिनव-जवान, शक्तिशाली भारतार
ओलैयना, ओलैयना, संतानतुमीबिप्लाबार।
समुखसमारसन्मुख्ते मुक्ति-जुंझरुहोशियार,
मृत्युबिजयकरिबलगिबा स्वाधीनतारखुलीद्वार...''

(शक्तिसंपन्न भारत के विश्व-विजेता युवा वीरो/आओ, क्राँति के बेटों।/सचेत हो, संघर्ष तुम्हारे सामने है/तुम्हें मृत्यु पर विजय प्राप्त करनी है/स्वतंत्रता के मार्ग खोलकर...)।

असम में चिर लोकप्रिय हुआ एक अन्य गीत इस तरह है:

''लुइतारपरारइएमी देका लोरा, मोरिबोलायभायानाई।
मुक्तिमेधारमहानमेजिर नेजलफिरंगति छाय,
पुरोहितोजदिथितातेयंतोरी त्रासातेमुर्छा जय,
अमि आगेबरहिदिंगिपतीपती तेजेरेबलिशाल जामे बोवाई...''

(हम युवा है, लोहित के तट वाले,
हमें मृत्यु का भय नहीं।
हम पेंचदार अग्निपुंज हैं
आज़ादी के बलिदान वेदी के,
पुजारी डर जाए, दूर हटे और मूर्छित हो,
हम फिर भी आगे बढ़ते रहेंगे,
अपना मस्तक देकर,
वधशाला से बहते रक्त की धार...'')

एक सैन्य बैंड की तर्ज पर तैयार यह गीत युवाओं को खासतौर पर लुभाता है ताकि वह अनुशासित तरीके से पैदल मार्च कर सकें, वहीं स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान ज्योति प्रसाद के इस गीत को भी बेहद लोकप्रियता मिली थी।

''सजु हा, सजु हा, नवजवान,
सजु हा, सजु हा, नवजवान,
तोइ क़रीबालगिबानी-स्नान।
जीवन-जौवनकरीप्रणपान
रंगोली करी दे रणंग्नान...

....

वज्रकंठेबिस्वक्सान
सत्यार जय-गान,
बुकुरतेजेरेधुई दे अजी
भारतरापामान,
सजु हा, सजु हा, नवजवान।''

(तैयार रहो, ओ युवा सैनिको
तुम्हें करना है अग्निकुंड में स्नान,
करना है होम अपना जीवन और युवत्व,
युद्धभूमि को रक्तिम करते हुए
अपने रक्त से।
विश्व को सुनाते रहो
अपनी गूंजती आवाज़ में
सत्य का गान,
पोंछ डालो, रक्त को अपने वक्षस्थल से
भारत पर थोपे गए अपमान का,
ओ युवा, सैनिको।)

एक अन्य उल्लेख बिष्णु प्रसाद राभा (1909-1969) का किया जाना ज़रूरी है। इस महान सांस्कृतिक विभूति को प्रेम से कलागुरु पुकारा जाता है और स्वतंत्रता संघर्ष के दिनों में इनकी कविताएँ और गीतों का जन-साधारण पर अभूतपूर्व असर रहता था। राभा का एक गीत इस तरह है:

''आइमोर भारती जननी,
लखिमिदु:खुनी
भारतबशीहृदयार रानी
मोरपारानार
मोरजीवानार
सेनेहिगोसानी

....

परानाराई
जीवनराई
कियनबंदिनी ?''

(भारती, मेरी माता, मेरी मातृभूमि,
साधनसंपन्न, परन्तु निर्धन
लोगों के हृदय की रानी
मेरे हृदय, मेरे जीवन की देवी

....

मेरी जीवन माता,
वह क्यों बंदी है ?)

मौखिक गीत और लोक गीतों सहित कई गीत और कविताएँ, खुद रचनाकारों द्वारा दर्ज किए जाने के अभाव में काल के गर्त में समाकर खो चुकी हैं। ऐसी कुछ रचनाएँ, और उनके कुछ हिस्सों को प्रतिष्ठित विद्वानों ने इन्हें इकट्ठा कर संरक्षित किया। इनमें से कुछ हैं जीबकांत गोगोई और निर्मल प्रभा बोरदोलोई। जीबकांत गोगोई के 'स्वाधीनता संग्रामार गीत' और निर्मल प्रभा बोरदोलोई के 'स्वाधीनता संग्रामार असमिया गीतरुकबिता' में स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान असम में गाए/सुनाए गए 200 से अधिक गीत और कविताएँ संकलित हैं। हमेशा बिना तैयारी के बोले जाने वाले असमिया बिया-नाम (विवाह गीत) में भी स्वतंत्रता आंदोलन के उल्लेख आते थे। उनमें से अनेक

Elite Academy For Education & Training Pvt. Ltd. ★ Delhi ★

में गाँधीजी, तिलक, नेहरू, सरोजिनी नायडू तथा नबीन चंद्र बोरदोलोई और गोपीनाथ बोरदोलोई जैसे प्रांतीय नेताओं का भी ज़िक्र आता है।

भारत की आज़ादी के अवसर पर भूपेन हज़ारिका ने भी विशेष गीत लिखा था। उनके छोटे भाइयों में से एक ने वह गीत 15 अगस्त, 1947 को तेजपुर में राष्ट्रीय ध्वज फहराते समय गाया था। 10 पंक्तियों का यह छोटा सा गीत इस प्रकार है :

''भारत आकाशस्थानाहे
स्वाधीनातारुशरप्रतीक
चिकमिकस्वाधीनता
झिकमिकस्वाधीनता
भारतार्बुकुनतुनुछ,
नतुनप्रतिग्यलोइ
पुरनास्वाधीनता अमारो लक्ष्य,
आगबार्हिजाओ, शताशहीदरकाम्य,
चिकमिकस्वाधीनता
झिकमिकस्वाधीनता।''

Elite Academy For Education & Training Pvt. Ltd. ★ Delhi ★

(भारत के आकाश में, मुस्काए/आज़ादी की सुबह का प्रतीक/चमकदार आज़ादी, उज्ज्वल आज़ादी/भारत के हृदय में एक नया उत्साह/पूर्ण आज़ादी प्राप्त करना लक्ष्य है हमारा/शहीद हमें बताते हैं, आगे बढ़ो/चमकदार आज़ादी, उज्ज्वल आज़ादी।)

जहाँ तक साहित्य की अन्य विधाओं की बात है, जाहिर है असम और मणिपुर में कथा-साहित्य के क्षेत्र में अधिक कार्य नहीं हुआ। नाटकों के संबंध में, ज्योति प्रसाद अगरवाला का लिखा असमिया नाटक 'लभिता' का नाम जाना-माना है। इसमें स्वतंत्रता आंदोलन की झलक मिली और उस पर इसका असर भी हुआ। इसकी कथा एक युवा ग्रामीण युवती के बारे में है जो द्वितीय विश्व युद्ध और भारत छोड़ो आंदोलन द्वारा उपजी दोहरी जटिल स्थितियों के कारण और नागा हिल्स और मणिपुर पर युद्ध का असर पड़ने अपने जीवन का बलिदान देती है। लभिता का मंचन आज तक होता है।

आमजन के बीच लेइनू द्वारा संगीतबद्ध (मौखिक रूप से) 'खोंगजोम पर्व' नामक पारंपरिक गाथागीत उनके बीच देशभक्ति की भावना प्रबल करने वाली सबसे महत्वपूर्ण साहित्यिक कृति है। इसके रचयिता एक धोबी थे जो खोंगजोम की लड़ाई के चश्मदीद रहे थे। 1891 में लड़ा गया इस आंग्ल-मणिपुरी युद्ध में कई सौ वीर मणिपुरियों ने अपना जीवन न्योछावर किया था। 'खोंगजोम पर्व' में लेइनू ने उन बहादुर मणिपुरी सैनिकों की वीरता और देशभक्ति को बहुत खूबसूरती से इस मौखिक-गाथागीत में संगीत से सजाया है। पिछले कई बरसों में 'खोंगजोम पर्व' की सांगीतिक प्रस्तुति का दायरा बढ़ाकर इसमें अन्य प्रसिद्ध मणिपुरी चरित्रों और महाभारत से भी कुछ चरित्रों का समावेश किया गया है। ■

संदर्भ

1. Bardoloi, Nirmalprabha, ed. Swadhinata SangramarAsamiya Geet aru Kabita. SahityaAkademi, New Delhi. 2002.
2. Bardoloi, Nirmalprabha.Asamar Loka Kabita. Bina Library, Guwahati. 1987.
3. Gogoi, Jibakanta. Swadhinata Samgramar Geet. Express Publications, Guwahati. 1999.
4. Goswami, Praphulladatta. Bara Mahar Tera Geet. SahityaAkademi, New Delhi. 1962.
5. Hazarika,Atulchandra. Manchalekha. Lawyers' Book Stall, Guwahati. 1967.
6. Hazarika, Karabi Dek¡, ed. Samajik Sanskritik PrekshapatatAsamiya Geet aru Geeti-Kabita. SahityaAkademi, New Delhi. 2011.
7. Homen Bargohain, ed.Asamyia Sahityar Buranji. Vol VI.ABILAC, Guwahati. 1993.
8. Mahanta, Keshab. SwadhinataAndolanar Geet. National Book Trust, New Delhi. 1997.
9. Neog, Maheswar.Asamiya Sahityar Ruparekha. 1962. Reprint 2000. Chandra Prakash, Guwahati.
10. https://blog.mygov.in/the-legacy-of-khongjom-war, https://thoubal.nic.in/tourist-place/khongjom-war-memorial-complex, https://imphaleast.nic.in/culture-heritage.
11. 100 Years (1891-1991): Manipur's Last ¡r of Independence. Editor: Ch Manihar Singh. Directorate of Information & Public Relations, Government of Manipur. Imphal, 1991.

प्रकाशन विभाग के विक्रय केंद्र

नई दिल्ली	पुस्तक दीर्घा, सूचना भवन, सीजीओ कॉम्प्लेक्स, लोधी रोड	110003	011-24367260
नवी मुंबई	701, सी- विंग, सातवीं मंज़िल, केंद्रीय सदन, बेलापुर	400614	022-27570686
कोलकाता	8, एसप्लानेड ईस्ट	700069	033-22488030
चेन्नई	'ए' विंग, राजाजी भवन, बसंत नगर	600090	044-24917673
तिरुअनंतपुरम	प्रेस रोड, नयी गवर्नमेंट प्रेस के निकट	695001	0471-2330650
हैदराबाद	कमरा सं 204, दूसरा तल, सीजीओ टावर, कवाड़ीगुड़ा, सिकंदराबाद	500080	040-27535383
बेंगलुरु	फर्स्ट फ्लोर, 'एफ' विंग, केंद्रीय सदन, कोरामंगला	560034	080-25537244
पटना	बिहार राज्य कोऑपरेटिव बैंक भवन, अशोक राजपथ	800004	0612-2675823
लखनऊ	हॉल सं-1, दूसरा तल, केंद्रीय भवन, क्षेत्र-एच, अलीगंज	226024	0522-2325455
अहमदाबाद	4-सी, नेप्चून टॉवर, चौथी मंज़िल, नेहरू ब्रिज कॉर्नर, आश्रम रोड	380009	079-26588669
गुवाहाटी	असम खाड़ी एवं ग्रामीण उद्योग बोर्ड, भूतल, एमआरडी रोड, चांदमारी	781003	0361.2668237

काज़ी नज़रुल इस्लाम : एक युवा विप्लव

डॉ अनुराधा रॉय

भारत के उपनिवेशवाद विरोधी राष्ट्रीय आंदोलन ने पहले महायुद्ध के बाद एक नये और जीवंत दौर में प्रवेश किया। मोहनदास करमचंद गाँधी इसके नये नेता के तौर पर उभरे और उन्होंने समाज के निचले तबकों को इससे जोड़ कर इसे जन आंदोलन में तब्दील किया। दृढ़ नैतिक मूल्यों पर आधारित एक सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था की उनकी परिकल्पना और इस लक्ष्य को हासिल करने के उनके अनूठे तौर-तरीक़ों ने देश में हलचल मचा दी। गाँधीजी ने सितंबर 1920 में शुरू किये गये असहयोग आंदोलन को फरवरी 1922 में वापस ले लिया। लेकिन इस आंदोलन से पैदा हुई जागृति की उद्दात भावना बरकरार रही। राष्ट्रीय आंदोलन ने एक मज़बूत सामाजिक और अंतरराष्ट्रीय आयाम ग्रहण कर लिया। इस आंदोलन में आज़ादी की भावना के साथ ही रूढ़िवादी और अवरोधक विचारों को लेकर बेचैनी भी मौजूद थी। इसके साथ ही इसमें अन्याय और असमानता से मुक्त तथा प्रेम और स्वतंत्रता से परिपूर्ण विश्व का सपना भी शामिल था। काज़ी नज़रुल इस्लाम अपने साहित्यिक और राजनीतिक प्रयासों से इस भावना के मुख्य वाहक बने।

राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन अपने नये दौर में एक सामाजिक तौर पर संवेदनशील अभियान में तब्दील हो गया। इस दौरान सिर्फ ब्रिटिश शासन के खिलाफ ही नहीं, बल्कि ग़रीबों के दमन, महिलाओं की दासता तथा सभी प्रकार की असमानताओं और शोषणों के खिलाफ भी विरोध प्रदर्शन हुए। समूची मानवता की हर लिहाज से मुक्ति की लालसा भारत के स्वतंत्रता आंदोलन का हिस्सा बन गयी। सामाजिक और राजनीतिक उत्थान के प्रभावी माध्यम के रूप में युवाओं पर बल दिया जाना इस दौर की विशेषता रही। दरअसल, महायुद्ध में युवा ही सिपाही के रूप में लड़े थे। लिहाजा, समूचे विश्व में युवाओं के महत्व में इज़ाफा हुआ। महायुद्ध के बाद के वर्षों में भारत के अन्दर और बाहर चिंतकों और लेखकों में इस उम्मीद ने व्यापक रूप धारण कर लिया कि मानव सभ्यता का उत्थान युवाओं की शक्ति से संभव है। माना जा रहा था कि विद्रोही, ओजस्वी, स्वतंत्रता प्रिय, बलिदानी और मृत्यु से बेपरवाह युवा वर्ग सभी राष्ट्रीय, अंतरराष्ट्रीय, सामाजिक और राजनीतिक समस्याओं को हल करने में सक्षम हैं।

नज़रुल : युग भावना के प्रतीक

काज़ी नज़रुल इस्लाम (1899-1976) बंगाल में राष्ट्रीय आंदोलन के एक महत्वपूर्ण प्रतीक बन गये। उस समय की राजनीतिक स्थिति को देखते हुए 1920 के दशक में उनकी भूमिका स्वतंत्रता आंदोलन के प्रमुख कवि की रही। नज़रुल का जन्म दक्षिण बंगाल के बर्दवान ज़िले के चुरुलिया गाँव में एक ग़रीब परिवार में हुआ। उनका बचपन का नाम दु:खू मियाँ था। महायुद्ध शुरू होने के समय

लेखक जाधवपुर विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग में प्राध्यापक हैं। ईमेल: anuradhaju@gmail.com

वह स्कूली शिक्षा ही हासिल कर रहे थे। लेकिन यह साहसी बालक स्कूल की पढ़ाई छोड़ ब्रिटिश भारतीय सेना की 49वीं बंगाली बटालियन में हवलदार के तौर पर शामिल हो गया। बड़ी संख्या में मध्य और निम्न वर्ग के युवा अपने औपनिवेशिक शासकों की तरफ से युद्ध में भाग ले रहे थे। उनमें से कुछ इसे देशभक्तिपूर्ण कार्य मान रहे थे क्योंकि इससे गुलाम और निहत्थे भारतीयों को युद्धकौशल प्राप्त हो रहा था। वे समझते थे कि यह प्रशिक्षण स्वतंत्रता आंदोलन की सफलता के लिये महत्वपूर्ण होगा। नज़रुल के विचार भी इससे मिलते-जुलते थे। इसकी झलक उनके उपन्यास 'बंधनहारा' (बंधन से मुक्त) में मिलती है जिसकी रचना उन्होंने युद्ध के दौरान कराची में तैनाती के समय की थी।

नज़रुल की युद्धकाल में रचित कहानी 'ब्यथार दान' (दु:ख का उपहार) से पता चलता है कि पहले महायुद्ध ने भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन को एक अंतरराष्ट्रीय आयाम दे दिया। युद्ध ने एक व्यापक विश्व की रूमानी चाहत को बल दिया और इसकी अपरिहार्य नियति से एकरूपता की अमूर्त भावना पैदा की। बोल्शेविक क्रॉंति (1917) का सामाजिक-आर्थिक संदेश अंतरराष्ट्रीय तौर पर प्रभावी हो गया। 'ब्यथार दान' में इस नयी सामाजिक-राजनीतिक संवेदना को स्पष्टता के साथ अभिव्यक्त किया गया है। यह दो भारतीय सैनिकों की कहानी है जो सोवियत सीमा को पार कर लाल सेना में शामिल हो जाते हैं। उन्हें इस बात का गर्व और खुशी होती है कि वे एक परोपकारी प्रयास में योगदान कर रहे हैं। पहले महायुद्ध के बाद के वर्षों में विश्व के अनेक हिस्सों में उपनिवेशवाद विरोधी आंदोलन शुरू किये गये। एक साथ देखने पर वे अंतरराष्ट्रीय परिघटना लग रहे थे जिसे दूसरे महायुद्ध के बाद अपने तार्किक अंत तक पहुँचना था। इस्लामी जगत में उपनिवेशवाद विरोधी और सुधारवादी ज्वार उठ खड़ा हुआ। इसे एक के बाद एक युवा आंदोलनों में अभिव्यक्ति मिली। युवा तुर्कों के आंदोलन ने 1908 में सनसनी फैला दी थी। पहले महायुद्ध के बाद तुर्की में कमाल पाशा के आंदोलन ने इस तरह के कई आंदोलनों को प्रोत्साहित किया जिनमें युवा तातार और युवा अफगान आंदोलन शामिल हैं। इन सबने भारतीयों और खास तौर से काज़ी नज़रुल इस्लाम को प्रभावित किया।

नज़रुल 1920 में अपनी 49वीं बटालियन को भंग किये जाने के बाद बंगाल लौट आये। उन्होंने अपने उदीयमान कम्युनिस्ट मित्र मुज़फ्फर अहमद के साथ एक मेस में रहते हुए लेखन पर ध्यान केंद्रित किया। दोनों ने मिल कर ब्रिटिश विरोधी मुखर दैनिक 'नवयुग' का प्रकाशन शुरू किया। इस दैनिक की शुरूआत एके फ़ज़लुल हक़ ने अपनी कृषक प्रजा पार्टी के मुखपत्र के तौर पर की थी। नज़रुल इसके साथ ही गाँधी के असहयोग आंदोलन में भी पूरे उत्साह के साथ कूद पड़े। शुरूआत में उन्हें अपने और गाँधी के जीवन दर्शन के बीच फासला इतना नहीं लगा जिसे भरना असंभव हो। आखिर गाँधी भी एक न्यायपूर्ण समाज और वीरतापूर्ण प्रतिरोध के पक्ष में थे। दरअसल, गाँधी के अहिंसक सत्याग्रह का समर्थन करने के साथ ही नज़रुल विद्रोही युवा की शब्दावली तैयार कर रहे थे। उनका गीत 'भांगार गान' इसकी मिसाल है। इसमें वह युवा शिव से जेल की सलाखों के टूटने के साथ ही विनाश के शंखनाद का आह्वान कर रहे हैं। इस गीत की रचना जनवरी 1922 में असहयोग आंदोलन के आखिरी दिनों में की गयी थी। उसी माह नज़रुल की सबसे लोकप्रिय कविता 'बिद्रोही' प्रकाशित हुई जो एक युवा विद्रोही के इर्दगिर्द केंद्रित थी। इस लम्बी कविता में राष्ट्रीय आंदोलन का प्रत्यक्ष ज़िक्र नहीं होने के बावजूद यह विद्रोही एक जगह पीड़ितों के लिये संघर्ष का संकल्प करता है। वह युवाओं के विध्वंसकारी विद्रोह के मानवता के लिये लाभदायक रचनात्मक कार्यक्रम में परिवर्तन की संभावना को जन्म देता है। इसके अलावा विद्रोह प्रेमिका की कातर निगाह के लिये आवारा चाहत अभिव्यक्त करता है। खास तौर से साहित्य में राजनीतिक और सामाजिक तौर पर प्रभावी युवा के साथ उसकी प्रेमी की छवि भी जुड़ी थी। विद्रोह की भावना ने राष्ट्रीय आंदोलन में ज़बरदस्त ऊर्जा का संचार किया। इस कविता ने देश भर में सनसनी फैला दी। इसका प्रमाण कुछ ऐसे युवाओं के संस्मरणों में मिलता है जो बाद में प्रसिद्ध बंगाली लेखक बने। इनमें अचिंत्य कुमार सेनगुप्ता और प्रेमेंद्र मित्रा शामिल हैं। यहाँ तक कि अपेक्षाकृत अराजनीतिक बुद्धदेव बसु ने कहा, "...मुझे महसूस हुआ कि इस तरह की कोई चीज मैंने पहले कभी नहीं पढ़ी।" इस कविता के प्रकाशन के बाद नज़रुल को विद्रोही कवि के रूप में जाना जाने लगा।

काज़ी नज़रुल इस्लाम (1899-1976) बंगाल में राष्ट्रीय आंदोलन के एक महत्वपूर्ण प्रतीक बन गये। उस समय की राजनीतिक स्थिति को देखते हुए 1920 के दशक में उनकी भूमिका स्वतंत्रता आंदोलन के प्रमुख कवि की रही।

असहयोग आंदोलन के बाद बंगाल की राजनीति वैकल्पिक रास्तों की तलाश कर रही थी। नज़रुल ने इस दिशा में स्पष्ट राह दिखायी। उनके साप्ताहिक 'धूमकेतु' ने नयी पीढ़ी की चाहत को बुलंद आवाज़ दी। लेकिन अगस्त 1922 में शुरू हुई यह पत्रिका उसी साल अक्टूबर में धूमकेतु की तरह ही विलीन हो गयी। इस साप्ताहिक को बेचैन और विद्रोही युवाओं का विजय ध्वज माना गया। इसने पूर्ण स्वतंत्रता को लक्ष्य घोषित करते हुए इसे हासिल करने के लिये जो रास्ता दिखाया वह अस्पष्ट होते हुए भी निस्संदेह उग्र था। उस समय काँग्रेस के नेता ब्रिटिश शासकों के सामने रखने के लिये सांवैधानिक प्रतिज्ञापत्र के विभिन्न विकल्पों पर विचार कर रहे थे।

यह हैरानी की बात नहीं है कि नज़रुल बंगाल में 1920 के दशक में उग्र राष्ट्रवाद के पुनरुत्थान का प्रमुख ज़रिया बन गये। क्रॉंतिकारी उनके 'धूमकेतु' से बहुत प्रभावित थे। यहाँ तक कि जुगांतर पार्टी ने

इसे अपना मुखपत्र बता दिया। चटगाँव शस्त्रागार पर 1930 का हमला उग्र राष्ट्रवाद के इस दौर की चरम परिणति रहा। इसके बाद बंगाल के प्रशासनिक केंद्र राइटर्स बिल्डिंग पर हमला समेत हिंसा की छिटपुट घटनाएँ भी हुईं।

कहते हैं कि नज़रुल 'धूमकेतु' के संपादकीय स्याही से नहीं, बल्कि खून से लिखा करते थे। उन्होंने इस पत्रिका के लिये कविताएँ भी लिखीं। उनकी कविता 'आनंदोमयीर आगमने' (माँ दुर्गा के आगमन पर) धूमकेतु में ही प्रकाशित हुई। इस कविता की शुरुआती पंक्तियाँ हैं -

आরকতকালথাকবিবেটিমাটিরঢেলারমূর্তিচাঁড়ালে?
স্বর্গযেআজজয়করেছেঅত্যাচারীশক্তি-চাঁড়াল!

ओ, माँ दुर्गा, कब तक छिपी रहोगी माटी की मूर्ति के पीछे? देखो, निर्दयी और शक्तिशाली आक्रांता आज किस तरह स्वर्ग पर हुक्म चला रहे हैं।

यह शरतकालीन वार्षिक दुर्गा पूजा के दौरान ब्रिटिश रूपी महिषासुर के वध के लिये माँ आनंदमयी का आह्वान था।

नज़रुल को इस कविता के लिये जनवरी 1923 में गिरफ्तार कर राजद्रोह के आरोप में साल भर के कठोर कारावास की सज़ा सुनायी गयी। उन्होंने राजनीतिक बंदियों के साथ जेल अधिकारियों के दुर्व्यवहार के विरोध में कारागार में भूख हड़ताल शुरू कर दी। इससे समाज में व्यापक चिंता फैल गयी और नज़रुल के समर्थन में विरोध प्रदर्शन शुरू हो गये। उस समय के अग्रणी बंगाली साहित्यकार रवीन्द्रनाथ टैगोर ने नज़रुल को तार भेज उनसे भूख हड़ताल खत्म करने का आग्रह किया। निस्संदेह यह तार नज़रुल तक कभी भी नहीं पहुँचा। टैगोर ने अपने संगीत नाटक 'बसंत' को नज़रुल को समर्पित किया। इस नाटक में बसंत यौवन का प्रतीक है। दो प्रमुख राजनीतिज्ञों, हुसैन शहीद सुहरावर्दी और चितरंजन दास ने नज़रुल के साथ एकजुटता प्रदर्शित करने के लिये एक विशाल रैली आयोजित की।

नज़रुल की युद्धकाल में रचित कहानी 'ब्यथार दान' (दुःख का उपहार) से पता चलता है कि पहले महायुद्ध ने भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन को एक अंतरराष्ट्रीय आयाम दे दिया। युद्ध ने एक व्यापक विश्व की रूमानी चाहत को बल दिया और इसकी अपरिहार्य नियति से एकरूपता की अमूर्त भावना पैदा की।

असहयोग आंदोलन के बाद बंगाल में समाजवादी विचारधारा वाले एक खासे मज़बूत विकल्प का उदय हुआ जो बोल्शेविक क्राँति से प्रभावित था। कामगारों और किसानों के हितों के लिये समर्पित समाजवाद ने अनुशीलन पार्टी के सदस्यों समेत अनेक उग्र राष्ट्रवादियों को प्रभावित किया। नज़रुल ने दिसंबर 1925 में शुरू किये गये बंगाल के पहले समाजवादी संगठन लेबर स्वराज पार्टी के प्रकाशन 'लांगल' (कृषि में काम आने वाला हल) का संपादन किया। इस प्रकाशन का नाम अगस्त 1926 में 'गणवाणी' (आम जन की आवाज़) कर दिया गया। नज़रुल ने इन दोनों पत्रिकाओं में प्रकाशित अपनी अनेक कविताओं में ग़रीबों के अधिकारों को छीने जाने का विरोध करते हुए उनके जागरण का आह्वान किया। इसके साथ ही उन्होंने महिलाओं की दासता, सभी धर्मों के नेताओं के पाखण्ड और भ्रष्टाचार तथा सामाजिक-धार्मिक और आर्थिक सत्ता में असमानता और शोषण की भी निंदा की।

'अग्निवीणा' (1922) से लेकर 'प्रलय शिक्षा' (1930) और 'चंद्र बिंदु' (1931) तक नज़रुल के हर कविता संग्रह में विद्रोह की भावना से ओतप्रोत अनेक कविताएँ हैं। उन पर हमेशा सरकार की नजर रही। उनकी कुछ रचनाओं को प्रतिबंधित भी कर दिया गया। उन्होंने विप्लव की अपनी भावना में राजनीतिक और सामाजिक विद्रोह का संदेश दिया। नज़रुल ने इसके साथ ही युवा शक्ति का महिमा मंडन करते हुए सैन्य अभियानों, भौगोलिक खोजों और पर्वतारोहण का भी ज़िक्र किया। यह भावना पुरुष-महिला प्रेम की तीक्ष्णता से भी जुड़ी थी। यह प्रेम अक्सर विवाहेतर होने के बावजूद विवाह से बड़ा था। यह सड़ी-गली पितृसत्ता के खिलाफ युवा विद्रोह था। 'कल्लोल' में प्रकाशित नज़रुल की प्रेम कविताएँ 'माधबी प्रोलाप' और 'अनामिका' ने सनसनी फैला दी। यह पत्रिका तड़पते और तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था के खिलाफ विद्रोह करते युवा की आवाज़ के रूप में मशहूर थी। बंगाली साहित्य के इस काल को 'कल्लोल युग' के नाम से जाना जाता है। बंगाल में कामगारों की पहली पत्रिका होने का दावा करने वाली 'संहति' से 'कल्लोल' के सौहार्दपूर्ण संबंध थे। 'कल्लोल' को नज़रुल के कविता संग्रह 'बिषेर बंशी' (जहर बाँसुरी) और सनत सेन के 'फाँसीर गोपीनाथ' के प्रकाशन पर कम-से-कम दो बार प्रत्यक्ष राजनीतिक कारणों से पुलिस का कोप भाजन बनना पड़ा। 'फाँसीर गोपीनाथ' उग्र राष्ट्रवादी गोपीनाथ साहा के बारे में है जिन्हें एक श्वेत की हत्या के मामले में फाँसी की सज़ा दी गयी थी। 'कल्लोल' ने जिस बगावत का संदेश दिया उसका एक पहलू युवावस्था की निशानी के तौर पर गैर-पारंपरिक आज़ाद जीवनशैली भी थी। यह नज़रुल की भी विशिष्टता थी।

कुल मिला कर उस युग की भावना के दो पहलू थे - विध्वंसक और निर्माणात्मक। राष्ट्रीय आंदोलन में आज़ादी की भावना के साथ ही रूढ़िवादी और अवरोधक विचारों को लेकर बेचैनी भी मौजूद थी। इसके साथ ही इसमें अन्याय और असमानता से मुक्त तथा प्रेम और स्वतंत्रता से परिपूर्ण विश्व का सपना भी शामिल था। काज़ी नज़रुल इस्लाम अपने साहित्यिक और राजनीतिक प्रयासों से इस भावना के मुख्य वाहक बन गये। हम कह सकते हैं कि साहित्य और राजनीति उस युग की भावना को अभिव्यक्त कर रही थी। नज़रुल इस भावना की बेहतरीन मिसाल थे। नज़रुल ने मुख्य तौर पर कवि के रूप में बंगाली युवा वर्ग को अपनी ओर आकर्षित किया। उनकी आवाज़ में भावुकता तथा भाषा में चमक और प्रवाह था। उनके समकालीन इटली के एक बॉलोजिस्ट गैलवानी की तरह ही नज़रुल ने बंगाल में मेंढक की तरह मृत पड़ी युवा शक्ति को पुनर्जीवित किया। इस बॉयोलोजिस्ट ने मृत मेंढकों की टांगों में विद्युत प्रवाहित करने पर उनकी मांसपेशियों के फड़फड़ाने के संबंध में एक खोज की थी।

हिन्दू-मुस्लिम एकता का प्रचार

असहयोग आंदोलन में हिंदुओं और मुसलमानों के बीच अभूतपूर्व एकता देखने को मिली थी। लेकिन बाद में दोनों समुदायों के बीच अलगाव बढ़ता गया। यह स्थिति स्वतंत्रता आंदोलन की राह में एक बड़ी बाधा थी। नज़रुल ने सांप्रदायिक घृणा के खिलाफ संघर्ष को अपना प्रमुख उद्देश्य बनाया। वह बचपन से ही हिन्दू और मुस्लिम, दोनों संस्कृतियों के बीच रहे थे। उन्होंने अपने जीवन में अनेक

हिन्दू मित्र बनाये। उनका विवाह भी एक हिन्दू महिला से हुआ। वह हर किस्म के धार्मिक रूढ़िवाद से ऊपर थे। उन्होंने कट्टरता और अंधविश्वासों के लिये मुसलमानों और हिंदुओं, दोनों की ही आलोचना की। उनकी कविताओं के रूपकों और लक्षणाओं में हिन्दू पौराणिक कथाओं तथा इस्लामी इतिहास और परम्पराओं के तत्व समान रूप से शामिल हैं। लेकिन उन्होंने 'रुद्र' और 'ईशान' जैसे शब्दों का इस्तेमाल हिन्दू देवताओं के नामों के बजाय विध्वंस के प्रतीक के तौर पर किया है। उन्होंने कमाल पाशा और इस्लामी जगत के अन्य क्राँतिकारी नेताओं की सराहना की। लेकिन नज़रुल ने इन्हें धर्म रक्षक नहीं माना। उन्होंने गतिरुद्धता के माहौल में जागरुकता फैलाने पर इन नेताओं का शुक्रिया अदा किया। उस समय कइयों की नजर में हिन्दू और मुस्लिम बंगालियों के लिये साहित्यिक भाषाएँ अलग-अलग थीं। लेकिन नज़रुल ने एक साझा साहित्यिक भाषा और परिवेश रचने की कोशिश की, जिसमें बंगाली हिंदुओं और मुसलमानों, दोनों की संवेदनाओं को जगह मिल सके। लेकिन अपने समुदाय को लेकर नज़रुल की विशेष चिंता स्वाभाविक थी। उन्होंने आम तौर पर अज्ञान और अंधविश्वास में डूबे अपने समुदाय में युवा विद्रोह की भावना भरने की भरसक कोशिश की। उनके गैर-साम्प्रदायिक दृष्टिकोण ने अनेक विवादों को जन्म दिया और कई हिन्दू और मुसलमान उनसे नाराज़ हो गये। लेकिन इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि हिन्दू और मुस्लिम, दोनों समुदायों के बंगालियों की पीढ़ियों ने उनकी कविताओं से प्रेरणा ली है। नज़रुल एक कविता में कहते हैं -

हम हिन्दू और मुसलमान एक डाली के दो फूल हैं।

'মোরাএকইবৃন্তেদুটিকুসুমহিন্দু-মুসলমান' उनके गीत 'काडारी हुशियार' (खेवनहार, होशियार!) में देश के नेताओं को उनकी जोखिम भरी यात्रा के लिये उत्साहित किया गया है। नज़रुल ने बढ़ती साम्प्रदायिकता के संदर्भ में 1926 में काँग्रेस के प्रांतीय सम्मेलन के लिये एक गीत की रचना की जिसकी लोकप्रिय पंक्तियाँ हैं -

'হিন্দুনাওরামুসলিম?'– ঐজিজ্ঞাসেকোন্ জন?
কাণ্ডারীবল, 'ডুবিছেমানুষ, সন্তানমোরমা-র!'

कौन पूछता है कि वे हिन्दू हैं या मुसलमान? ओ खेवनहार, उनसे कहो, डूबने वाले सभी इंसान हैं-मेरी माँ की संतानें!

अपने पुत्र बुलबुल के 1929 में निधन के बाद नज़रुल के जीवन और सृजनात्मकता ने आध्यात्मिक मोड़ ले लिया। उनका विद्रोही तेवर कुछ कमज़ोर हो गया। उनकी आध्यात्मिकता मुक्त थी जिसमें हिन्दू योगी और तांत्रिक पंथों तथा इस्लामी सूफीवाद का सम्मिलन था। इस दौर में उन्होंने इस्लामी गीतों के अलावा माँ काली की भक्ति में श्यामा संगीत की भी रचना की और उनकी धुनें बनायीं। नज़रुल की पत्नी को 1939 में लकवा मार गया और वह इस सदमे से उबर नहीं सके। जल्दी ही वह गंभीर रूप से बीमार हो गये और उनके दिमाग़ ने काफी हद तक काम करना बंद कर दिया। लेकिन वह अपने समकालीनों के साथ ही आने वाली पीढ़ियों के लिये भी प्रेरणा के स्रोत बने रहे।

नोट : इस आलेख के लिये तथ्य मुख्य तौर पर मेरे लेख 'जातीय संग्रामे जीवनबाद' से लिये गये हैं। यह लेख अनुष्टप, कोलकाता से 2019 में प्रकाशित लेखों के मेरे संग्रह 'इतिहासेर हरेक गेरो' में शामिल है। मैं प्रीति कुमार मित्रा की आभारी हूँ जिनकी ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नयी दिल्ली से 2007 में प्रकाशित पुस्तक 'द डिसेंट ऑफ नज़रुल इस्लाम' से मुझे काफी सहायता मिली। लेकिन इस लेख का मूल आधार नज़रुल का लेखन ही है जिसे हरफ प्रकाशनी, कोलकाता से 1970 में प्रकाशित अनेक खण्डों वाले 'नज़रुल रचना संभार' में संकलित किया गया है। ■

कृपया ध्यान दें

पत्रिकाओं की सदस्यता के सम्बन्ध में सूचना

कोविड-19 महामारी से उत्पन्न स्थितियों के कारण साधारण डाक से भेजी गई हमारी पत्रिकाओं की डिलिवरी न हो पाने से संबंधित शिकायतें प्राप्त हो रही हैं। हमारे माननीय उपभोक्ताओं को योजना, कुरुक्षेत्र, बाल भारती और आजकल पत्रिका की समय पर डिलिवरी सुनिश्चित करने के लिए यह निर्णय लिया गया है कि नए उपभोक्ताओं को साधारण डाक से पत्रिकाओं का प्रेषण तत्काल प्रभाव से रोक दिया जाए। यह केवल नए उपभोक्ताओं के लिए लागू होगा तथा मौजूदा उपभोक्ताओं को उनकी सदस्यता दरों के अनुसार पत्रिकाएँ भेजी जाती रहेंगी।

हमारी पत्रिकाओं के लिए नई सदस्यता दरें जिनमें रजिस्टर्ड डाक से पत्रिका भेजने का शुल्क भी शामिल है, निम्नलिखित हैं-

सदस्यता प्लान	योजना, कुरुक्षेत्र तथा आजकल (सभी भाषाएँ)	बाल भारती
1 वर्ष	रु. 434	रु. 364
2 वर्ष	रु. 838	रु. 708
3 वर्ष	रु. 1222	रु. 1032

वर्तमान परिस्थितियों में यह एक अस्थायी व्यवस्था है क्योंकि डाक विभाग साधारण डाक के वितरण में कठिनाइयों का सामना कर रहा है। अतः जैसे ही देश में सामान्य स्थितियाँ बहाल हो जाएँगी पत्रिकाओं को पुनः साधारण डाक से भेजना आरम्भ कर दिया जाएगा।

Elite Academy For Education & Training Pvt. Ltd. * Delhi *

हिंदी की साहित्य-चेतना

आलोक श्रीवास्तव

खड़ी बोली हिंदी साहित्य का इतिहास हज़ार साल पीछे तक जाता है। अमीर खुसरो को खड़ी बोली का पहला कवि माना गया है। परन्तु आज हम जिस खड़ी बोली हिंदी साहित्य को जानते हैं, उसे 19वीं सदी के अंतिम दशकों में रूप मिलना शुरू हुआ था। यह वही समय था जब भारत के स्वतंत्रता-आंदोलन ने भी स्वयं को संगठित करना आरंभ किया था। स्वतंत्रता-आंदोलन का विकास और आधुनिक हिंदी साहित्य का विकास एक दूसरे के साथ, एक दूसरे को बल देते हुए हुआ।

हिंदी आज़ादी के आंदोलन की भाषा बनी। यह स्वाभाविक था कि गुजरात के मोहनदास गाँधी, वल्लभ पटेल, बंगाल के सुभाष बोस, पंजाब के लाजपत राय, महाराष्ट्र के गोपालकृष्ण गोखले और तमिलनाडु के राजगोपालाचारी, जब अपने प्रांतों से बाहर देश को संबोधित करने निकले तो उन्हें हिंदी में ही अपनी बात रखनी पड़ी। हिंदी स्वाधीनता संग्राम की व्यावहारिक आवश्यकता थी। जिस गति से आज़ादी की लड़ाई विकसित हुई, उसी गति से हिंदी गद्य का विकास हुआ। फिर इसी अनुपात में हिंदी की साहित्यिक चेतना पल्लवित हुई। अत: हिंदी की साहित्य-चेतना अनिवार्य रूप से स्वाधीनता आंदोलन से संबद्ध रही। इसका तात्पर्य यह हुआ कि वह उन मूल्यों से संबद्ध रही, जो आज़ादी के आंदोलन के मूल्य थे।

वे मूल्य क्या थे?

उन मूल्यों को किन विचारों ने सींचा था?

वे मूल्य आधुनिक भारत के निर्माण की अंतर्वस्तु थे। इन मूल्यों को रचने में राजा राममोहन राय, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानंद, लोकमान्य तिलक, गोपालकृष्ण गोखले, महात्मा गाँधी, श्री अरविंद, बाल गंगाधर जैसे महान विचारकों-नेताओं का जीवन व संघर्ष लगा था। इन मूल्यों का संबंध भारतीय समाज में जातिभेद-उन्मूलन, स्त्री-मुक्ति, स्त्री-शिक्षा, समता, स्वतंत्रता, लोकतंत्र आदि लक्ष्यों से था। कुल मिलाकर 19वीं सदी, 18वीं सदी के मध्यकालीन सामंती भारत और 20वीं सदी के लोकतांत्रिक आधुनिक भारत के बीच का संक्रमण काल थी।

भारत की स्वतंत्रता का संघर्ष सिर्फ विदेशी गुलामी से मुक्ति का संघर्ष नहीं था। भारत जिस कारण से गुलाम हुआ था, वह सामाजिक पतन दूर हो और नए समाज की संरचना हो, यह इस संघर्ष का लक्ष्य था। इसी लक्ष्य के अनुरूप भारत में एक नई वैचारिकी उत्पन्न हुई। इस नई वैचारिकी का वाहक भारत की सभी भाषाओं का आधुनिक साहित्य बना। बांग्ला में सबसे पहले, तत्पश्चात, हिंदी, मराठी, मलयालम, तमिल, ओड़िया, पंजाबी, गुजराती, उर्दू आदि सभी भारतीय भाषाओं में इस नई चेतना से भास्वर साहित्य का सृजन हुआ। हिंदी साहित्य भी स्वतंत्रता की इस चेतना का वाहक बना। अनिवार्यत: यह स्वातंत्र्य चेतना समाज सुधार और व्यक्ति के नवनिर्माण के आधार पर साहित्य में विकसित हुई।

स्पष्ट है कि भारत के स्वतंत्रता आंदोलन से हिंदी साहित्य का संबंध एक जटिल और अनेक स्तरीय संबंध था। युग की माँग के चलते निश्चित रूप से ऐसे साहित्य की भी रचना हुई, जिसमें राजनीतिक चेतना और जन-आह्वान था। परन्तु आज़ादी की लड़ाई से हिंदी साहित्य के संबंध का यह एक स्तर था, संपूर्ण नहीं। साहित्य को उस मन का निर्माण भी करना था, जो स्वतंत्रता का महत्व समझ सके, जो स्वतंत्रता के समस्त आयामों को स्वयं में धारण कर सके। साहित्य को उस समाज का निर्माण भी करना था, जो स्वतंत्रता के अनुरूप अपना पुनर्गठन कर सके। अर्थात एक ऐसा समाज जिसमें बाल-विवाह व विधवा जीवन का अभिशाप न हो, जिसमें अशिक्षा व कुरीतियाँ न हों, जिसमें जात-पांत और रूढ़िवाद न हो, जिसमें मनुष्य सामाजिक गुलामी में पिसता न हो। अत: हिंदी साहित्य में स्वतंत्रता आंदोलन की अभिव्यक्ति निम्न रूपों में हुई -

1. समाज सुधार
2. भारतीय इतिहास का गौरव कथन
3. प्राचीन साहित्य व पुराकथाओं का नवीन संस्कार
4. देशानुराग
5. प्रकृति प्रेम
6. मानव प्रेम व विश्व प्रेम
7. व्यक्ति स्वातंत्र्य का स्वर
8. समाजवाद

लेखक कवि एवं साहित्यकार हैं। दो दशक से भी अधिक 'धर्मयुग' व 'नवभारत टाइम्स, मुंबई' के संपादन से जुड़े रहने के बाद वे 8 वर्ष तक 'अहा! जिंदगी' पत्रिका के प्रधान संपादक रहे। फिलहाल संवाद प्रकाशन की 'विश्व ग्रंथमाला' व 'भारतीय भाषा ग्रंथमाला' के प्रधान संपादक हैं। ईमेल: samvad.in@gmail.com

समाज-सुधार उस युग के कवियों का प्रमुख स्वर था। इस संदर्भ में हम भारतेंदु के नाटक अंधेर नगरी को याद कर सकते हैं, जिसमें सामाजिक विडंबनाओं को तीखे ढंग से व्यक्त किया गया था। भारतीय इतिहास का गौरव-कथन नाटकों, कहानियों, उपन्यासों व काव्य के जरिए बड़े पैमाने पर व्यक्त हुआ। प्रसाद की ऐतिहासिक कहानियाँ व ऐतिहासिक नाटक, निराला की इतिहास आधारित अनेक कविताएँ इसका उदाहरण हैं। 19वीं सदी और 20वीं सदी के पूर्वार्ध में ही अँग्रेज़ों ने नालंदा, अजंता, हड़प्पा जैसे स्थलों को खोजा और प्राचीन यात्रियों के यात्रा विवरणों की मदद से उनकी ऐतिहासिकता स्थापित की। भारतीय इतिहास का प्राचीन काल पूरे वैभव के साथ सामने था। इस खोज ने जहाँ एक ओर राष्ट्रवादी इतिहास को जन्म दिया, वहीं दूसरी ओर साहित्य को कथा, उपन्यास, नाटक व काव्य के लिए ढेरों चरित्र व कथानक उपलब्ध करा दिया। प्राचीन काल का गौरवमंडन बीसवीं काल के पूर्वार्ध के हिंदी साहित्य का एक मुख्य स्वर रहा। इसे शक्ति मिली बांग्ला साहित्य के हिंदी अनुवादों के जरिए। 19वीं सदी के अंतिम दशकों और 20वीं सदी के प्रारंभिक दशकों में, जब हिंदी गद्य अपने निर्माण की प्रक्रिया से गुजर ही रहा था, तब बांग्ला में प्रचुर मात्रा में ऐतिहासिक कथा का सृजन हो चुका था। इन रचनाओं का हिंदी में अनुवाद या रूपांतरण हुआ अथवा इनकी प्रेरणा से मौलिक लेखन हुआ। ऐतिहासिक कथानक को आधार बना कर लिखी गई रचनाओं के माध्यम से भारतीय अतीत के स्वर्णिम होने तथा उसके खोये गौरव को पुनः प्राप्त करने का भाव स्थापित करने की कोशिश की गई।

प्राचीन कथाओं व पुराकथाओं के आधार पर साहित्य रचना एक लोकप्रिय कार्य बन गया। आज़ादी की भावना को व्यक्त करने के लिए यह एक अप्रत्यक्ष तरीका था। अँग्रेज़ सरकार के प्रतिबंधों की इस कथानक तक पहुँच मुश्किल थी। राम-रावण, कृष्ण-कंस आदि के द्वंद्व के जरिए अच्छाई की बुराई पर जीत, सत्य-असत्य के संघर्ष को व्यक्त कर देशवासियों को विदेशी सत्ता के प्रतिकार की चेतना से संबद्ध करने का प्रयास किया गया। मैथिलीशरण गुप्त का 'जयद्रथ-वध', 'भारत भारती', निराला की 'राम की शक्तिपूजा' आदि रचनाएँ इसी कोटि की थीं। भारत के प्राचीन काव्यों महाभारत, रामायण से लेकर उपनिषदों और पुराणों में ऐसी कथाओं, प्रसंगों की भरमार थी, जिनके आधार पर सत्य-असत्य के संघर्ष को, नवीन मानवता के निर्माण और स्वातंत्र्य-कामना को वर्णित किया जा सकता था।

देशानुराग उस समय के कवियों के काव्य में प्रमुख स्वर बन गया। प्रसाद की कविताएँ – 'अरुण यह मधुमय देश हमारा', 'हिमालय के आंगन में', माखनलाल चतुर्वेदी की 'पुष्प की अभिलाषा', प्रसाद की कहानी 'पुरस्कार', सुभद्राकुमारी चौहान की कविता 'वीरों का कैसा हो वसंत' आदि देश के प्रति अनुराग की सघन भावनाओं से रची गईं। इन कविताओं में अँग्रेज़ी सत्ता का विरोध किए बिना अपने देश से प्रेम, उसके प्रति कर्तव्यभावना, उसके लिए उत्सर्ग हो जाने की कामना, उसके नवनिर्माण के लिए प्रतिबद्धता आदि भावों को प्रभावशाली शब्दों में गूंथा गया था। प्रेमचंद के विख्यात उपन्यास 'रंगभूमि' में अंधे सूरदास का अपनी भूमि से प्रेम भी इसी देशप्रेम का एक रूप था। देशप्रेम की यह भावना वैकल्पिक समाजों की रचना, गाँवों में युवाओं के सेवाकार्य, रचनात्मक दृष्टिकोण आदि विविध रूपों में साहित्य में प्रकट हुई।

प्रकृति प्रेम साहित्य का एक प्रमुख विषय था– विशेष रूप से काव्य का। द्विवेदी युगीन काव्य में प्रकृति का वर्णन प्रमुख था तो छायावाद में यह वर्णन और सघन तथा संस्पर्शी हो उठा। अपने देश की प्रकृति से प्रेम इन रचनाओं में व्यक्त होकर पाठक के मन में देश की सजीव छवि निर्मित करता था, उसके हृदय को इस प्रकृति के आकर्षण से बांधकर गहनता देता था। रामनरेश त्रिपाठी के दो खंडकाव्य 'पथिक' और 'स्वप्न' उस जमाने में बहुत लोकप्रिय हुए। इसका मुख्य कारण यही था कि प्रकृति के प्रति प्रेम जीवन और देश के प्रति एक नए दृष्टिकोण में ढलकर इन काव्यों में उतरा था। हिमालय की उत्तुंग चोटियाँ, गंगा का प्रवाह, विंध्य के वन, सह्याद्रि का विस्तार, सागर की हिल्लोल, मरुभूमि का निर्जन, अभेद्य वनों का गहन संसार, विशाल पारदर्शी झीलें अर्थात, उत्तरी भारत से लेकर दक्षिण समुद्र तक और बंगाल से लेकर गुजरात तक के भारत का समग्र भूगोल इस प्रकृति प्रेम से प्रेरित साहित्य में व्यक्त हुआ। मातृभूमि का एक साकार, मनोरम, उत्प्रेरित चित्र इसने अनेक पीढ़ियों के मानस पर अंकित कर दिया। देश अब एक राजनीतिक परिकल्पना भर न था, वह एक विराट भूगोल था, जिसकी रेखाएँ स्पष्ट थीं, जिसके पर्वत, नदियाँ, मैदान, गाँव-घर-नगर एक विहंगम दृश्यावली बनाते थे। देश की यह छवि साहित्य में इतने रूपों में व्यक्त हुई, इतने संवेदनशील और सौंदर्यपरक ढंग से व्यक्त हुई कि उसने शिक्षित वर्ग में मातृभूमि का एक नया आयाम रच दिया। भारत की प्रकृति साहित्य का संस्पर्श पाकर भारत के जनजीवन का और इस देश के सौंदर्य का एक यथार्थ चित्र बन गई। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में हिंदी साहित्य का यह एक बड़ा योगदान था। यह उसकी अखिल भारतीय सोच का उदाहरण भी था।

मानव प्रेम व विश्व प्रेम ये दो मुख्य बातें ऐसी थीं, जो भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के दृष्टिकोण को निर्मित करती थीं। भारत के महान स्वतंत्रता सेनानियों ने स्वयं को भारत की स्वतंत्रता तक सीमित नहीं रखा था। इसे मानव-प्रेम व विश्व-प्रेम का आधार दिया था। गाँधी, नेहरू, अरविंद, तिलक ही नहीं उस युग के सैकड़ों आज़ादी के नेताओं का संपूर्ण लेखन उपलब्ध है। यह लेखन सदियों तक यह साक्ष्य देता रहेगा कि दक्षिण एशिया के इस प्राचीन देश ने अपनी स्वतंत्रता के लिए ब्रिटिश उपनिवेशवाद से लड़ते हुए मानव-प्रेम और विश्व-प्रेम के महान विचारों का सृजन किया। यही कारण है कि भारतीय आज़ादी की लड़ाई दुनिया भर के देशों के लिए मुक्ति की प्रेरक बनी। इस लड़ाई

देश की यह छवि साहित्य में इतने रूपों में व्यक्त हुई, इतने संवेदनशील और सौंदर्यपरक ढंग से व्यक्त हुई कि उसने शिक्षित वर्ग में मातृभूमि का एक नया आयाम रच दिया। भारत की प्रकृति साहित्य का संस्पर्श पाकर भारत के जनजीवन का और इस देश के सौंदर्य का एक यथार्थ चित्र बन गई। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में हिंदी साहित्य का यह एक बड़ा योगदान था। यह उसकी अखिल भारतीय सोच का उदाहरण भी था।

की सबसे सशक्त अंतर्वस्तु इसका विश्वप्रेम और मानवतावाद ही है। स्वतंत्रता संग्राम के इस महान विचार से भारत भर का साहित्य अनुप्राणित हुआ। हिंदी साहित्य का स्वरूप इससे निर्धारित हुआ। वह मात्र देशप्रेम की चेतना का साहित्य न रह कर विश्व-प्रेम व मानवतावाद के उद्‌गायन का साहित्य बना।

राष्ट्रीय चेतना ने हिंदी साहित्य में सिर्फ देशप्रेम, अतीत-प्रेम, समाज-सुधार आदि के भावों का ही समावेश नहीं किया, उसने व्यक्ति स्वातंत्र्य को भी स्वर दिया। वैयक्तिकता के मूल्य को इस साहित्य में वाणी मिली। वैयक्तिकता और व्यक्ति-स्वातंत्र्य का समय के इस मोड़ पर हिंदी साहित्य में आने का अर्थ क्या था और इसके अभिलक्षण क्या थे? अँग्रेज़ों ने 1757 की प्लासी की लड़ाई के बाद धीरे-धीरे पूरे देश पर अपना अधिकार जमा लिया था। मुग़लों के समय से चली आ रही उत्पादन, कृषि, कर आदि की व्यवस्था, शासनतंत्र, सत्ता का स्वरूप बदल गया। अँग्रेज़ जिस सभ्यता और संस्कृति के प्रतिनिधि थे, वह औद्योगिक क्रांति के बाद विकसित हुए पूंजीवाद के चरण में थी। अँग्रेज़ों ने जो व्यवस्था भारत में औपनिवेशिक शोषण के लिए बनाई वह मुग़लों के समय की सामंती-व्यवस्था से अपने स्वरूप और लक्ष्य दोनों में भिन्न थी। इसके बाद 1857 की क्रांति ने इस औपनिवेशिक व्यवस्था में मूलभूत परिवर्तन कर दिया। सारत: यह कि अँग्रेज़ों ने जो औपनिवेशिक तंत्र बनाया उसके साथ-साथ भारत में आधुनिकता का आगमन हुआ, 19वीं सदी बीतते बीतते राष्ट्रीय पूंजीवाद का विकास आरंभ हो चुका था। अँग्रेज़ी शिक्षा का प्रसार तेज हुआ। 19वीं सदी में हुए विज्ञान और तकनीक के तेज विकास ने भारतीय समाज पर भी इस औपनिवेशिकरण के साथ कदम रखा। ब्रिटिश गुलामी ने भारत को एक अलग-थलग उपमहाद्वीप से विश्व-व्यवस्था से जोड़ दिया। यूरोपीय पुनर्जागरण, औद्योगिक क्रांति, आधुनिकता आदि का प्रभाव भारतीय समाज पर पड़ा। उपनिवेश ने यहाँ एक नए शिक्षित मध्यवर्ग को पैदा कर दिया था।

जब हिंदी साहित्य के विकास को बीसवीं सदी के आरंभिक दो दशकों में गति मिली तब उपरोक्त समस्त परिवर्तनों का उस पर प्रभाव पड़ा। यह मध्यकाल से आधुनिकता में संक्रमण करते समाज का साहित्य था। भारतीय समाज वर्ण, जाति आदि के आधार पर गठित एक सामंती समाज था। उपरोक्त प्रक्रियाओं ने इसे बदल नहीं दिया, परन्तु समाज की इस संरचना पर दबाव पैदा किए और शिक्षित युवा वर्ग के मन में नवजीवन की आकांक्षाएँ पैदा कीं। इसी पृष्ठभूमि में वैयक्तिकता और व्यक्ति-स्वातंत्र्य के साहित्य का जन्म हुआ। छायावाद इसकी सबसे सशक्त अभिव्यक्ति बना। यह उस समाज का साहित्य था, जो अपने नवनिर्माण की आरंभिक लहरों से वाबस्ता था, जिसमें सामंती संबंधों की जकड़न से मुक्त होने की कामना ने जन्म ले लिया था। यह उस मन का साहित्य था जो स्त्री-पुरुष समता, स्त्री-स्वतंत्रता, स्त्री-पुरुष प्रेम की नवीन कल्पनाओं से आलोड़ित था। पंत का काव्य जहाँ एक ओर इन आधुनिक अनुभूतियों का कोमलतम स्वप्नजीवी रूप रच रहा था, वहीं निराला के काव्य में इसकी वेदना और दु:ख पुकार रहे थे। वहीं प्रसाद के 'आँसू' में वैयक्तिक्ता का गहन लोक रचा गया। महादेवी की कविता ने इस स्वतत्रंता और समता की स्त्री आकांक्षा को प्रामाणिक स्वर दिया।

यह वैयक्तिकता और वैयक्तिक स्वतंत्रता एक आधुनिक मूल्य थी। परम्परागत भारतीय समाज में परिवर्तन की आकांक्षा का स्वप्न इसका आधार था। इस आधार का प्रत्यक्ष संबंध उस देश से था, जो विदेशी दासता से मुक्त होने के लिए व्याकुल था, ताकि वह अपने भाग्य का नियंता स्वयं बन सके। विदेशी सत्ता द्वारा देश के संसाधनों का दोहन और शोषण रुके। देश में पहले ही आरंभ हो चुके पूंजीवादी विकास को गति मिले। यह गति देश में नई संस्थाओं का निर्माण करे। समाज में अवसरों की बराबरी हो। स्त्री-शिक्षा और आधुनिकता की जो प्रक्रिया ब्रिटिश मशीनरी को चलाने की प्रक्रिया में सीमित रूप में उपजी थी, उसे गति मिले, उसकी गुणवत्ता में वृद्धि हो। इन परिवर्तनों से आज़ाद देश में व्यक्ति का स्वतंत्र विकास हो। ये सारे स्वप्न परस्पर गुंथे हुए थे। आज़ादी कोई अमूर्त स्वप्न नहीं था। न ही इसका संबंध भारत से गोरों के चले जाने भर से था। इसका संबंध भारत के लोगों के जीवन में उन परिवर्तनों से था, जो उन्हें वर्तमान विश्व में एक बेहतर देश और समाज का नागरिक बना सके। जयशंकर प्रसाद, निराला, महादेवी, पंत, माखन लाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा नवीन, प्रेमचंद फिर इनके तत्काल बाद आई नई पीढ़ी के रचनाकार, अज्ञेय, यशपाल, दिनकर, बच्चन, नरेंद्र शर्मा आदि के साहित्य में जहाँ एक ओर राजनीतिक स्वतंत्रता का स्वर था तो दूसरी ओर इस स्वतंत्रता को परिभाषित और व्याख्यायित करने वाले जीवन के विस्तृत और गहरे चित्र थे। प्रेमचंद ने औपनिवेशिक शासन और ब्रिटिश सत्ता द्वारा पैदा की गई और संरक्षित जमींदारी प्रथा और महाजनी व्यवस्था में पिसते किसानों के जीवन का मर्मस्पर्शी और अत्यंत विस्तृत संसार रचा।

यह स्वतंत्रता अनिवार्यत: समाजवाद के स्वप्न से संबद्ध थी। समाजवाद का विचार भारतीय स्वातंत्र्य संघर्ष में धीरे-धीरे विकसित हुआ। सुभाष चन्द्र बोस, आचार्य नरेंद्र देव आदि नेताओं ने समाजवाद को आज़ाद भारत के स्वप्न में शामिल किया। क्रांतिकारी आंदोलन भी 1925 के बाद एक नए चरण में पहुँच चुका था। उसके पहले मास्टर सूर्यसेन, बाघा जतीन, वासुदेव बलवंत फड़के, खुदीराम बोस जैसे सैकड़ों देशभक्तों ने आज़ादी की लड़ाई के क्रांतिकारी पक्ष को अपने प्राणों की आहुति से सींचा था। परन्तु अब जिन क्रांतिकारियों की नई पीढ़ी ने संघर्ष को नए आधारों पर गढ़ना शुरू किया तो उनके सामने सबसे प्रमुख प्रश्न यह था कि अँग्रेज़ों के जाने के बाद आज़ादी का स्वरूप क्या होगा? यह भगत सिंह, चन्द्रशेखर आज़ाद, भगवतीचरण वोहरा की पीढ़ी थी। इस मंथन से यह निकला कि सशस्त्र क्रांतिकारी संघर्ष का लक्ष्य भारत में आज़ादी के बाद समाजवादी व्यवस्था का निर्माण है। इसी कारण पुनर्गठित क्रांतिकारी दल का नया नाम 'हिंदुस्तान समाजवादी प्रजातांत्रिक सेना' रखा गया।

इस सबका प्रभाव हिंदी साहित्य पर पड़ा। बल्कि हिंदी साहित्य इस मंथन से ही अब रूपांतरित होना शुरू हुआ। छायावाद की वैयक्तिकता समाजवाद के स्वप्न में बदल कर 1936 के बाद प्रगतिशील साहित्य के रूप में विकसित होना शुरू हुई। 1947 में आज़ादी मिलने के पूर्व के दस वर्ष इस नई धारा के साहित्य के विकास के थे। राष्ट्रीय आंदोलन की चेतना में बीसवीं सदी के आरंभिक 50 वर्षों में जो जो परिवर्तन हुए, उन परिवर्तनों का स्रोत समाज और इतिहास की गति थी, इस गति से पैदा हुई सामूहिक आकांक्षा और सामूहिक स्वप्न थे। हिंदी साहित्य इसी गति, आकांक्षा और स्वप्न का शब्दरूप था। ■

Elite Academy For Education & Training Pvt. Ltd. ★ Delhi ★

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मंत्रालय
भारत सरकार

आज़ादी का अमृत महोत्सव

देश के सबसे बड़े सरकारी प्रकाशन समूह संग व्यापार का अवसर

हमारी लोकप्रिय पत्रिकाओं और साप्ताहिक रोज़गार समाचार की विपणन एजेंसी लेकर सुनिश्चित करें आकर्षक नियमित आय

विपणन एजेंसी मिलना... मतलब

- ✓ असीमित लाभ
- ✓ निवेश की 100% सुरक्षा
- ✓ स्थापित ब्रांड का साथ
- ✓ पहले दिन से आमदनी
- ✓ न्यूनतम निवेश-अधिकतम लाभ

रोज़गार समाचार के एजेंसी धारकों के लिए लाभ

प्रतियों की संख्या	खुदरा मूल्य में छूट
20-1000	25%
1001-2000	35%
2001-अधिक	40%

मासिक पत्रिकाओं के एजेंसी धारकों के लिए लाभ

प्रतियों की संख्या	खुदरा मूल्य में छूट
20-250	25%
251-1000	40%
1001-अधिक	45%

विपणन एजेंसी पाना बेहद आसान

- किसी शैक्षणिक योग्यता की बाध्यता नहीं
- कोई व्यावसायिक अनुभव जरूरी नहीं
- खरीद का न्यूनतम तीन गुना निवेश (पत्रिकाओं हेतु) अपेक्षित

रु. 12/-

रु. 22/-

रु. 15/-

सम्पर्क

रोज़गार समाचार
फोन: 011-24365610
ई-मेल: sec-circulation-moib@gov.in

पत्रिका एकक
ई-मेल: pdjucir@gmail.com
फोन: 011-24367453

पत्र भेजें : रोज़गार समाचार, कक्ष संख्या-779, 7वां तल, सूचना भवन, लोधी रोड, नई दिल्ली-110003

Elite Academy For Education & Training Pvt. Ltd. ★ Delhi ★

स्वाधीनता आन्दोलन और राष्ट्रवाद

देवेन्द्र चौबे

भारतीय राष्ट्र की पूरी परिकल्पना जिन विचारों पर खड़ी है, उसे निर्मित करने में देश की जनता द्वारा 1764 के बक्सर-युद्ध से 1857 तथा 1857 के संग्राम से 1947 में देश की आज़ादी तक उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद के खिलाफ किए गए संघर्ष की बड़ी भूमिका रही है; खासकर 1857 से 1947 के बीच। आज़ादी के अमृत महोत्सव के बहाने इतिहास, लोक स्मृतियों एवं साहित्यिक पाठों में मौजूद स्वाधीनता आंदोलन के उन संदर्भों को समझना एक महत्वपूर्ण कार्य होगा, जिनसे भारतीय राष्ट्रवाद का ढांचा खड़ा होता है। महत्वपूर्ण बात यह है कि 1857 से 1947 के बीच साहित्य में मौजूद स्रोत भारतीय राष्ट्रवाद के स्वरूप में आए परिवर्तनों को समझने में मदद करते हैं।

भारतीय इतिहास में 1857 से 1947 के बीच हुए स्वाधीनता आंदोलन का महत्वपूर्ण स्थान है। यह आंदोलन सिर्फ भारतीय जनता द्वारा किए गए संघर्ष का प्रतीक ही नहीं है; बल्कि, यह 1857 की क्राँति और उसके बाद के संघर्ष में भारतीय जनता की साझी हिस्सेदारी और देश के लिए कुछ कर गुज़रनेवाली चेतना का कभी न समाप्त होनेवाला एक जीवंत राष्ट्रवादी अध्याय भी है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि आधुनिक भारत की पूरी परिकल्पना विकसित करने में इस दौर की एक बड़ी भूमिका रही है; चाहे वह साहित्य हो या इतिहास, भारत की राजनीति हो या भूगोल। स्वाधीनता आंदोलन के इस संघर्ष ने यह भी बताया कि आनेवाले दिनों में एशिया महादेश का यह भारतीय राष्ट्र कैसा होगा? उसका समाज कैसा होगा? स्वाधीनता के बाद की वैश्विक राजनीति की धारा क्या होगी और किन संदर्भों को लेकर यह राष्ट्र पूरी दुनिया के सामने खड़ा होगा। उसके खड़ा होने का आधार या विचार या प्रकृति क्या होगी? वह दूसरे राष्ट्र की भावनाओं और आत्मसम्मान को महत्व देगा या अन्य राष्ट्रों की तरह अपनी विस्तारवादी आर्थिक एवं राजनीतिक नीतियों को वृहत्तर रूप से विकसित करेगा? ये कुछ ऐसे संदर्भ हैं जो आज़ादी के अमृत महोत्सव के अवसर पर भारतीय राष्ट्र को लेकर एक बार पुनर्विचार करने की माँग करते हैं।

दरअसल, किसी भी राष्ट्र और उसके वर्तमान संदर्भों को समझने के लिए इतिहास के साथ ही लोक एवं ग्रामीण क्षेत्रों में मौजूद उन स्रोतों को भी खंगालने की ज़रूरत पड़ती है, जिन्हें कई बार इतिहासकार और अध्येता अमहत्वपूर्ण मानकर छोड़ देते हैं। आखिर, ये संदर्भ और स्रोत क्या है, जो भारतीय राष्ट्र की निर्मितियों को समझने में मदद करते हैं? इन्हें समझने का समय और इतिहास क्या होगा? विचारधारा क्या होगी? सिद्धांत क्या होगा? आदि-आदि ये कुछ ऐसे सवाल हैं जो इतिहास के अध्येताओं को हमेशा

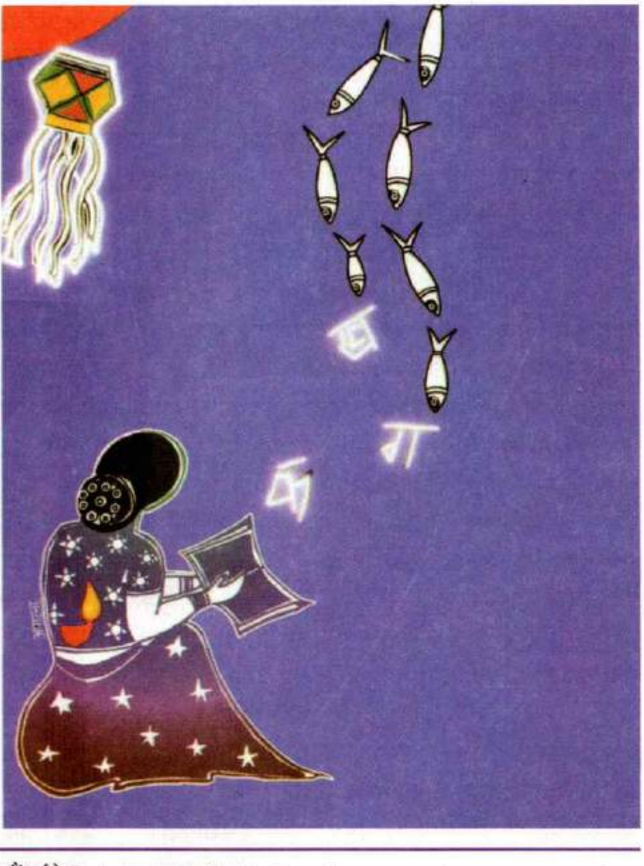

लेखक भारतीय भाषा केंद्र, जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली में प्रोफेसर हैं। ईमेल: devendrachoubeyjnu@gmail.com

परेशान करते हैं। प्रसिद्ध विचारक जॉन प्लामेंटाज़ ने राष्ट्रवाद पर विचार करते हुए यह समझने कि कोशिश की है कि आखिर अपने मूल चरित्र में राष्ट्रीयता या राष्ट्रवाद अंततः एक सांस्कृतिक संघटना क्यों है और कुछ समय बाद उसका स्वरूप राजनीतिक क्यों हो जाता है? क्या यह उसकी सहज परिणति है या उसकी बनावट ही ऐसी होती है कि वह जाने-अनजाने किसी विशिष्ट राष्ट्रीय संस्कृति के उत्थान के मूल्याँकन में मदद करने लगती है जिसका चरित्र वृहत्तर समाज एवं राष्ट्र की आधारभूत संरचनाओं को प्रभावित करने लगता है। यद्यपि यह एक महत्वपूर्ण बात है कि यूरोप में विकसित राष्ट्रीयता नस्लीय, भाषाई, शासकीय, सामंतवादी-पूंजीवादी धारा की तरफ इशारा करती है; वही एशिया, अफ्रीका, लैटिन अमेरिका आदि देशों में उदित राष्ट्रीयता लोक संस्कृति, साहित्य, कला आदि जन मूल्यों के सहारे राष्ट्रीय मुक्ति या राष्ट्रीय उत्थान के धारा का निर्माण की तरफ। इन सवालों और संदर्भों को लेकर एरिक हॉबसबाम, बेनेडिक्ट एंडर्सन, रणधीर सिंह, रणजीत गुहा, शाहिद अमीन, ज्ञानेन्द्र पाण्डेय आदि जैसे इतिहासकार तो चिंतित होते ही हैं; कई बार इस प्रकार के प्रश्न आम जनता को भी मुश्किल में डाल देते हैं कि आखिर इस प्रकार की दासता से मुक्ति के लिए किये जा रहे राष्ट्रवादी संघर्ष के नतीजे क्या होंगे? भारत में भी 1857 के बाद राष्ट्रवाद की जो धारा निर्मित हुई उसके निर्माण में दासता से मुक्ति की इस चेतना को देखा जा सकता है तथा जिसकी अनेक जटिलताएँ स्वाधीनता आंदोलन के दौरान दिखलाई देती हैं। इसलिए कहा जा सकता है कि भारतीय राष्ट्रवाद की निर्मिती, ब्रिटिश साम्राज्यवाद से संघर्ष करते हुए भारत के वृहत्तर सामाजिक समूहों की चेतना में मौजूद राष्ट्र-मुक्ति की आकांक्षा लिए निर्मित और विकसित होता है। उदाहरण के लिए, आधुनिक भारत के इतिहास को देखते हुए साफ पता चलता है कि भारतीय राष्ट्रवाद के निर्माण में 1857 का पहला स्वतंत्रता संघर्ष, 1905 में हुआ बंगाल का विभाजन, 1917 में गाँधी द्वारा चंपारण के किसानों के लिए किया गया संघर्ष, भगत सिंह एवं सुभाषचंद्र बोस जैसे सेनानियों के समाजवादी-क्राँतिकारी आंदोलनों के साथ ही 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन की बड़ी भूमिका रही है तथा इन ऐतिहासिक परिघटनाओं से आधुनिक एवं समकालीन भारत की पहचान बनती है। पर, मूल बात है, दासता से मुक्ति की कामना; जिसे स्वराज से जोड़कर बाल गंगाधर तिलक, गोपाल कृष्ण गोखले, महात्मा गाँधी आदि जैसे राष्ट्रवादी नेता अँग्रेज़ सरकार की दमनकारी नीतियों के खिलाफ खड़े होते हैं और स्वाधीनता आंदोलन के दौरान एक राष्ट्रीय समाज के वैकल्पिक गठन की तरफ संकेत भी करते हैं। गाँधी की दृष्टि में ग्रामीण समाज इसका वैकल्पिक आधार था जो स्वाधीनता आंदोलन में उनके साथ हमेशा खड़ा रहता है। यह समाज पूरी तरह से अँग्रेज़ी राज के खिलाफ है तथा गाँधी एवं अन्य

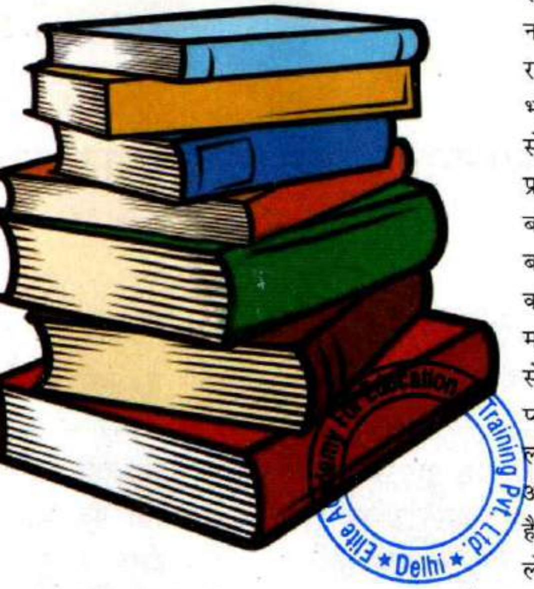

राष्ट्रवादी नेताओं के साथ मिलकर एक नए भारत की परिकल्पना को सामने रखता है; जो गाँधी के सपनों का भारत भी है और अंबेडकर के वर्ण-जाति से परे हिंदुस्तान भी; भगत सिंह का प्रगतिशील भारत भी है और सुभाषचंद्र बोस का स्वाभिमानी भारत भी। मुख्य बात है, यह राष्ट्रीय समाज देश से प्यार करता है और भारत को गाँवों का देश मानता है जहाँ के लोग अपनी मातृभूमि से प्यार करते हैं। खेत-खलिहान से प्यार करते हैं और जहाँ सागर की लहरें, बहती हवाएँ, नदियों के जल और चहचहाते पक्षी देश का गीत गाते हैं और जिसे शब्द देते हैं, हमारे कवि, लेखक और उनकी साहित्य की दुनिया!

कहा जा सकता है कि भारतीय इतिहास का यह वह समय है जिसमें खंड-खंड में बँटी देशीय चेतना को वृहत्तर भारत से जोड़कर देखने की दृष्टि विकसित होती है, चाहे वह प्रकृति हो या समाज; साहित्य हो या संस्कृति; कला हो या दर्शन; जड़ हो या चेतन; ज्ञान हो या चिंतन। पर, ये संपूर्णता में देश की एक राष्ट्रवादी छवि गढ़ते हैं, तभी तो 1918 के बाद जयशंकर प्रसाद जैसा कवि भारत देश को लेकर यह कह उठते हैं - ''अरुण, यह मधुमय देश हमारा।'' और फिर देश के वृहत्तर समाज के सामूहिक चेतना में राष्ट्र मुक्ति की जो आकांक्षा है, वह शब्द का रूप लेकर सारे जहाँ में निम्न राष्ट्रीय सौन्दर्य के भावों से भरकर गुंजायमान हो उठती है- ''जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा। सरल तामरस गर्भ विभा पर नाच रही तरुशिखा मनोहर। छिटका जीवन हरियाली पर, मंगल कुमकुम सारा।''

यद्यपि जयशंकर प्रसाद की कविता में निहित ये ध्वनियाँ भारतीय राष्ट्र की उस पारम्परिक राष्ट्रीयता की तरफ संकेत करती है जिसे भारतेन्दु हरिश्चंद्र, बालकृष्ण भट्ट, महावीर प्रसाद द्विवेदी, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, रामविलास शर्मा आदि जैसे लेखक राष्ट्रीय साहित्य से जोड़कर संबोधित करते हैं। पर यह भी सच है कि ये निर्मितियाँ ही भारतीय जनता को ब्रिटिश राज के खिलाफ मानसिक रूप से तैयार करते हुए खड़ा होने के लिए प्रेरित करती हैं तथा भारतीय समाज में राष्ट्र (वाद) का एक ऐतिहासिक रूप रचती हैं तथा जिसके लिए देश और देश के लोग ही सब कुछ हैं।

सवाल है, 1857 से 1947 के बीच निर्मित राष्ट्रवाद के इस रूप को कैसे समझ जाए? इसे गाँधी के किसान आंदोलनों से जोड़कर देखा जाए या अंबेडकर के दलित संदर्भों से अथवा भगत सिंह के क्राँतिकारी-समाजवाद से जोड़कर देखा जाए या सुभाष चंद्र बोस के उग्र राष्ट्रवादी रुझान से? यह एक जटिल प्रश्न है, पर जिस तरह हिन्दी के लेखकों में प्रेमचंद, रामचन्द्र शुक्ल, हज़ारीप्रसाद द्विवेदी आदि इसे जातीय संदर्भों से जोड़कर देखते हैं तथा बांग्ला के रवीन्द्रनाथ टैगोर जैसे लेखक एक परिकल्पित चेतना के रूप

में मानते हैं, वह महत्वपूर्ण है। हाँ, यह ज़रूर है कि इनमें टैगोर को उस चेतना में भारतीय और एशिया महादेश की सभ्यता और संस्कृतियों का गहरा बोध दिखाई देता है जिसे वे अपने गोरा जैसे उपन्यासों और गीतांजलि जैसी कृतियों के ज़रिए समझने की कोशिश करते हैं तो प्रेमचंद को इसमें ग्रामीण सभ्यता की वे प्रछन्न धाराएँ दिखाई देती है जिसे वे कृषि संस्कृति से जोड़कर समझने कि कोशिश करते हैं।

पर, यह ज़रूर है कि 1857 से 1947 के बीच की राष्ट्रवादी निर्मितियों को समझने में लोक स्मृतियाँ और उन स्मृतियों में दर्ज लोक सृजन के विविध पाठ मदद करते हैं। उदाहरण के लिए, राष्ट्रवाद के इस स्वरूप और इसकी ऐतिहासिक चेतना को भारतीय स्वाधीनता आंदोलन के इतिहास के निम्न काल-खंड में बाँटकर देखने पर भारतीय राष्ट्रवाद की संरचना को समझने में थोड़ी मदद मिलती है। जैसे, एक 1857 का संघर्ष और उसकी परिणितियाँ; दो 1873 और भारतीय साहित्य, प्रेस तथा पत्रकारिता; 1885, काँग्रेस का उदय तथा एक नए बौद्धिक वर्ग का उदय; 1905, बंगाल का विभाजन, स्वाधीनता आंदोलन के उभार; 1917, गाँधी, अंबेडकर और स्वाधीनता आंदोलन की राष्ट्रीय धारा; 1942, भारत छोड़ो आंदोलन, क्राँतिकारी राष्ट्रवाद का मुक्ति संदर्भ। इस बीच साहित्य की दुनिया में 1936 एक अलग अर्थ लेकर आता है, जब लखनऊ में प्रसिद्ध लेखक प्रेमचंद की अध्यक्षता में प्रगतिशील लेखक संघ के गठन के बाद आर्थिक रूप से उत्पीड़ित एवं सामाजिक रूप से शोषित तबका साहित्य के केंद्र में खड़ा होता है। इसे शोषित और वंचित तबके के राष्ट्रवाद के रूप में देखा जा सकता है, जिसकी तरफ प्रेमचंद 1936 में प्रकाशित उपन्यास गोदान में संकेत करते हैं। गोदान किसान राष्ट्रवाद का एक बड़ा उदाहरण है जिसमें किसान और मज़दूर पात्र होरी और गोबर के बहाने प्रेमचंद ने वंचित एवं शोषित समाज के लिए राष्ट्रवाद के मायने समझने की कोशिश की है। इन संदर्भों और इन पर केंद्रित साहित्यिक पाठों के आधार पर राष्ट्रवाद और समकालीन भारत को समझना एक महत्वपूर्ण कार्य होगा।

1857 का संघर्ष, उसकी परिणितियाँ और उभरते भारतीय राष्ट्रवाद के मायने

भारतीय इतिहास में 1857 का संघर्ष एक बड़ी परिघटना के रूप में दर्ज है। यद्यपि इस संघर्ष में भारतीय सेनानियों की पराजय हुई, पर इसने यह समझने में मदद की कि भारत की बुनियाद किन वैचारिक और सामाजिक धरातल पर टिकी हुई है। इसने न केवल आधुनिकता का दरवाज़ा खोला, बल्कि 1857 में देश की जनता और उसमें सभी समुदायों द्वारा उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद के खिलाफ किए गए संघर्ष ने सामाजिक विकास की प्रक्रिया को समझने में भावनात्मक स्तर पर मदद किया तथा 1857 के संघर्ष ने सभी समूहों की भागीदारी ने सांझी संस्कृति की उस विरासत को मज़बूत किया जिस पर धर्मनिरपेक्ष भारत की नींव निर्मित हुई तथा जिसे 1947 के बाद पूरी दुनिया ने एशिया महादेश में धर्मनिरपेक्ष भारत की एक नई धमक के रूप में महसूस किया। संभवत: 1857 का संघर्ष नहीं होता तो मध्यकाल में बनी और विकसित हुई सांझी संस्कृति की विरासत को उतनी ताक़त नहीं मिलती जिसके कारण बड़ी संख्या में हिन्दू और मुसलमान सहित अन्य समुदायों और समूहों के लोगों ने मिलकर ईस्ट इंडिया कंपनी की दमनकारी नीतियों के खिलाफ संघर्ष किया और जीतते-हारते क्राँति के इतिहास में अपना नाम दर्ज किया। यह देशीय जनता का, एक ताक़तवर सत्ता के खिलाफ किया गया बड़ा और भारी संघर्ष था। दिल्ली के बादशाह बहादुरशाह ज़फ़र, कानपुर के नाना साहब, बैरकपुर में मंगल पांडे, जगदीशपुर के कुँवर सिंह, झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, लखनऊ की बेगम हज़रत महल, कर्नाटक के हलगली के वेडर, अवध के राजा बेनीमाधव, तब के बंगाल और अब के झारखंड के सीदो और कान्हु, आंध्र प्रदेश के सुब्बा रेड्डी, पूर्वी भारत की रानी गाइडिल्यू आदि सेनानियों सहित बड़ी संख्या में किसानों और मज़दूरों ने ताक़तवर ईस्ट इंडिया कम्पनी और अँग्रेज़ सेना के खिलाफ़ संघर्ष किया। इस युद्ध ने एक तरफ जहाँ किसान केंद्रित राष्ट्रवाद की नींव रखीं, वहीं दूसरी तरफ सांझी संस्कृति की एक मिसाल भी क़ायम की तथा भविष्य के भारत की एक धर्मनिरपेक्ष छवि भी बनाई। इसका असर हुआ और 1857 के बाद ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने भारत की शासन व्यवस्था चलाने के लिए 1858 में कई ऐक्ट बनाकर जो नीतिगत ढांचा तैयार किया, उसमें धर्म संबंधी निर्देशों के साथ-साथ अनेक नियमों-अधिनियमों की बुनियाद भी पड़ी तथा जिसका प्रभाव आज भी संघीय ढाँचें में देखा जा सकता है जिसके खिलाफ 1890 के बाद; खासकर 1917 के बाद गाँधी के साथ जनता ने बड़ा मोर्चा खोला।

1873 और भारतीय साहित्य, प्रेस तथा पत्रकारिता

वे नियम-अधिनियम क्या थे जिन्होंने 1857, विशेषकर 1873 के बाद के भारत को प्रभावित करना शुरू किया तथा जिसकी अनुगूँज साहित्य और पत्रकारिता की दुनिया में दिखलाई देती है तथा जिसके प्रतिरोध में एक बौद्धिक राष्ट्रवाद की चेतना उत्तर भारत के हिन्दी और बांग्ला भाषी समाज में दिखलाई देती हैं? उनमें 1858 में निर्मित दो ऐक्ट महत्वपूर्ण हैं: एक प्रेस ऐक्ट और दूसरा आर्म्स ऐक्ट। इन ऐक्ट का ही प्रभाव था कि भारत में 1878 से 1947 तक अनेक रचनाएँ, पत्र-पत्रिकाएँ और किताबें ब्रिटिश राज द्वारा प्रतिबंधित होती है जिनमें बालकृष्ण भट्ट की हिन्दी प्रदीप, प्रेमचंद कृत सोजे वतन, सखाराम गणेश देउसकर कृत देशेर कथा आदि। इन रचनाओं में ब्रिटिश राज के खिलाफ प्रतिरोध की गहरी चेतना देखी जा सकती है। इन पाठों की सबसे बड़ी भूमिका यह थी कि इन्होंने ब्रिटिश राज के खिलाफ आम जनता में असंतोष का भाव पैदा किया। हिन्दी लेखक भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने इसमें बड़ी भूमिका निभाई। यहाँ तक कि इस दौर के एक कवि महेश नारायण की कविता 'स्वप्न' इन दोनों एक्ट के खिलाफ प्रतिरोध की चेतन विकसित करते हुए राष्ट्रवाद के उसी रूप की तरफ संकेत करती है जिसकी चर्चा जॉन प्लामेंटाज़

सावित्री बाई फुले और ज्योतिबा फुले आदि के कारण महाराष्ट्र में उभरा वह दलित नवजागरण भी है जिसका एक वृहत्तर रूप 1920 के बाद भारतीय स्वाधीनता और सामाजिक आंदोलनों में अंबेडकर के आने के बाद दिखलाई पड़ता है।

Elite Academy Education & ... Delhi

करते हैं। महेश नारायण के स्वप्न की निम्न पंक्तियों में इस बौद्धिक राष्ट्रवाद की चेतना को महसूस किया जा सकता है- महादेव यह राज स्वाधीन कर दे। (स्वप्न, बिहार बंधु, 13 अक्टूबर 1881)

यहाँ महादेव का मिथ ब्रिटिश प्रेस ऐक्ट की धारा से बचने के लिए कवि ने किया है। यह भी महत्वपूर्ण है कि उस दौर के हिन्दी के बालकृष्ण भट्ट, प्रताप नारायण मिश्र सहित अनेक लेखकों ने ऐसे मिथ के ज़रिए भारतीयता को समझने की कोशिश की है जिसे कई बार कुछ टिप्पणीकार धर्म विशेष से जोड़कर देखने लगते हैं। वे भूल जाते हैं कि ऐसी निर्मितियों के पीछे ब्रिटिश राज के वे क़ानून थे जिनसे बचने के लिए लेखक धार्मिक संकेतों का सहारा ले रहे थे।

1885, काँग्रेस का उदय तथा एक नए बौद्धिक वर्ग का उदय

दरअसल, महेश नारायण जैसे कवि या भारतेन्दु हरिशचंद्र, बालकृष्ण भट्ट, प्रताप नारायण मिश्र आदि जैसे लेखक भारतीय राष्ट्रवाद की जिस धारा का निर्माण किया, उसका एक कारण 1885 में बनी काँग्रेस के साथ वह अँग्रेज़ी शिक्षा भी है, जो धीरे-धीरे प्रतिकार स्वरूप भारतीयों के अन्दर मातृभूमि और निज भाषा के प्रति एक गहरा लगाव विकसित करती है। काँग्रेस के कारण भरतीय बौद्धिक वर्ग को एक स्पेस भी मिलता है जिसका असर यह होता है कि अँग्रेज़ी शिक्षा ग्रहण कर यह तबका मध्य-वर्ग के रूप में स्वाधीनता आंदोलन में एक बड़ी भूमिका निभाता है जिसकी तरफ अमृतलाल नागर *करवट* और *पीढ़ियाँ* जैसे उपन्यासों में संकेत करते हैं। इसके साथ ही, सावित्री बाई फुले और ज्योतिबा फुले आदि के कारण महाराष्ट्र में उभरा वह दलित नवजागरण भी है जिसका एक वृहत्तर रूप 1920 के बाद भारतीय स्वाधीनता और सामाजिक आंदोलनों में अंबेडकर के आने के बाद दिखलाई पड़ता है। 1890 के आसपास हिन्दी में दलित और स्त्री सवाल पर जिस गंभीरता के साथ हिन्दी लेखक राधामोहन गोकुल कार्य करते हैं, वह महत्वपूर्ण है। 1910 में प्रकाशित उनकी एक रचना *अँग्रेज़ डाकू* ब्रिटिश राज द्वारा प्रतिबंधित भी होती है। पर, हिन्दी साहित्य के इतिहास में उनकी किसी रचना का उल्लेख नहीं मिलना, दुर्भाग्यपूर्ण है। हिन्दी के आलोचकों में रामविलास शर्मा और कर्मेंदु शिशिर उनकी चर्चा करते हैं तथा उसे हिन्दी नवजागरण का एक महत्वपूर्ण अंश मानते हैं। महत्वपूर्ण बात यह है कि ये लेखक ब्रिटिश राज की नीतियों को समझते हुए अपनी रचनाओं के माध्यम से जनता के अन्दर देश प्रेम की गहरी चेतना का विकास करते हैं। यह भी कहा जा सकता है कि ये लेखक बौद्धिक स्तर पर पूरे देश में ब्रिटिश राज के खिलाफ प्रतिरोध की जिस राष्ट्रवादी सामूहिक चेतना का निर्माण करते हैं, उसकी उपस्थिति बाद के भारतीय साहित्य में गहराई के साथ दिखलाई पड़ती है।

1905, बंगाल का विभाजन, स्वाधीनता आंदोलन के उभार

इसका एक उदाहरण, 1905 के बंगाल विभाजन के बाद रवीन्द्रनाथ टैगोर की रचनाओं को लिया जा सकता है। टैगोर *गीतांजलि* सहित अन्य रचनाओं में भारतीय राष्ट्र की जिन छवियों का निर्माण करते हैं, उसका गहरा असर भारत सहित पूरी दुनिया पर पड़ता है। टैगोर द्वारा गीतांजलि में रचित यह गीत उस भारतीय राष्ट्रवाद की तरफ संकेत करता है जिसे किसान केंद्रित एक सांस्कृतिक राष्ट्रवाद कहा जा सकता है तथा जिसका विकास 1930 के बाद हिन्दी के प्रेमचंद जैसे लेखकों की रचनाओं में दिखलाई पड़ता है। यह कृषक समाज का जमीन से अलग होने और उसके जाने से विचलित होने का दर्द है जो राष्ट्रवाद के नए रूप से हमारा परिचय कराता है। टैगोर तो जिस मार्मिकता के साथ बंगाल के दु:ख को गीतांजलि में प्रकट करते हैं, वह बहुत ही मार्मिक है। उसमें बंग-भंग के बाद शोक में डूबा हुआ बंगाल भविष्य के निर्माण की कामना करते हुए शोक में डूबा हुआ है तथा ब्रिटिश राज द्वारा उसकी छीनी गई समृद्धि को पुन: प्राप्त करने के लिए प्रार्थना कर रहा है- बांग्लार माटी, बांग्लार जल, बांग्लार वायु, बांग्लार फल/ पुण्य हऊक, पुण्य हऊक, पुण्य हऊक, हे भगवान! बांग्लार घर, बांग्लार हाट, बांग्लार वन, बांग्लार माठ। पुण्य हऊक, पुण्य हऊक, पुण्य हऊक, हे भगवान!

भारतीय स्वाधीनता आंदोलन का यह वही आख्यान है जिसे जन समाज किसान राष्ट्रवाद के साथ रचता है तथा जिसकी पहचान राष्ट्रवादी नेताओं में गाँधी सबसे पहले करते हैं। पर उसकी नींव तो 1905 में ही पड़ गई थी, जब ब्रिटिश राज के खिलाफ बंगाल समेत देश की जनता अपना संघर्ष तेज करती है। इसी का परिणाम है कि बाल गंगाधर तिलक, गोपाल कृष्ण गोखले आदि जैसे बड़े नेता 1905 के बाद राष्ट्र के प्रति एक नई चेतना लेकर आंदोलन में आते हैं जिसे 1917 में गाँधी के आने के बाद काफी बल मिलता है।

1917, गाँधी, अंबेडकर और स्वाधीनता आंदोलन की राष्ट्रीय धारा

दरअसल, पहले विश्व-युद्ध के बाद, अफ्रीका से लौटते ही गाँधी 1917 में चम्पारण जाते हैं, और वहाँ नील की खेती करने वाले किसानों से मिलते हैं। उनका चम्पारण के किसानों से मिलना एक बड़ी राष्ट्रीय परिघटना है। इसके बाद गाँधी पूरे भारत की यात्राएँ करते हैं जिसका ग्रामीण समाज पर गहरा असर पड़ता है। वहाँ गाँधी को एक नए भारत का दर्शन होता है, जहाँ की संस्कृति, सभ्यता और आर्थिक स्वावलम्बन के उन्हें अनेक स्रोत दिखलाई पड़ते हैं। गाँधी उससे प्रभावित होते हैं, पर किसानों की दरिद्रता और बेबसी उन्हें आर्थिक राष्ट्रवाद की तरफ मोड़ती है। पर, उन्हें

सबसे अधिक प्रभावित तथा विचलित करता है - किसानों के ऊपर चढ़ा क़र्ज़ और लगान; साथ ही, अँग्रेज़ों द्वारा कराई जा रही अनचाही नील, अफीम, गांजा आदि की खेती और अनेक तरह के आर्थिक संकटों से जूझते ग्रामीण किसानों की बदहाली तथा उनके मरते हुए सपने। गाँधी उनकी बातें बहुत ध्यान से सुनते हैं, उनके क़रीब जाते हैं, उनके जैसे होने की कोशिश करते हैं और उन्हें उत्प्रेरित करते हैं कि वे भी ब्रिटिश शासन के दमन एवं शोषण का विरोध असहयोग करते हुए करें एवं उनके शोषण तंत्र से बाहर निकले। अहिंसात्मक आन्दोलनों में शरीक हों और भय से मुक्त एक स्वतंत्र राष्ट्र के निर्माण में सहयोगी बनें। खड़ी बोली के एक लोक कवि ने निम्नलिखित पंक्तियों में प्रतिरोध और निर्माण की इस सक्रिय मनःस्थिति का उत्साहपूर्वक बयान किया है: साबरमती से चला संत, एक अहिंसाधारी/जगती में सन्नाटा छाया घूमी पृथ्वी सारी/काँपें कमरिया हाथ में लाठी एक लंगोटीधारी/घर में जा जा अलख जगाया, आज़ादी का पाठ पढ़ाया/खादीधारी हमें बनाया भारत तेरा पुजारी।

भोजपुरी के एक अज्ञात कवि ने भी गाँधी का जनता पर पड़े इसी प्रकार के प्रभाव का उल्लेख किया है जिसकी चर्चा बद्रीनारायण, पंकज राग, हितेंद्र पटेल, रश्मि चौधरी, दीपक कुमार राय आदि जैसे नई पीढ़ी के इतिहासकार भी करते हैं- ''मान गाँधी के बचनवा दुखवा हो जईहे सपनवा/तन पे उतार कपड़ा विदेशी, खद्दर के कइल धरनवा।''

अर्थात, गाँधी का लोक समाज पर प्रभाव इतना गहरा है कि लोगों को लगता है कि खद्दर और चरखा के ज़रिये गाँधी ब्रितानिया सरकार की अर्थव्यवस्था की चूलें हिला देंगे और अँगरेज़ भारत छोड़कर भाग जायेंगे। प्रसिद्ध हिन्दी कथाकार भीष्म साहनी ने भी लिखा है कि "गाँधी जी के स्वाधीनता संग्राम की सारी परिकल्पना ही नई और अनूठी थी। उनका विश्वास शस्त्रास्त्रों में नहीं था। वह अहिंसात्मक ढंग से लड़ाई लड़ने के हक में थे। गाँधी जी का विश्वास आत्मबल में था- ''एक ओर जहाँ वे ब्रिटिश सरकार के क़ानून भी नहीं मानना चाहते थे और उनका डटकर विरोध करते थे, दूसरी ओर वे किसी प्रकार की हिंसा का प्रयोग भी नहीं करना चाहते थे।"

यह एक परिप्रेक्ष्य है, गाँधी का जो उनके अन्दर, सपनों का एक अलग भारत निर्मित करता है। कहना न होगा कि इन बातों का गहरा असर लोगों पर दिखलाई पड़ता है। धीरे-धीरे भारतीय बौद्धिक जगत और आम जनता को 1918 से 1942 के अँग्रेज़ी राज के खिलाफ सत्याग्रह, अहिंसा, स्वराज, चरखा, समाजवाद, उग्र राष्ट्रवाद आदि और अंत में 1942 में करो या मरो जैसे आन्दोलनकारी शब्द मिलते हैं। इस बीच साहित्य से लेकर राष्ट्रीय राजनीति के क्षेत्र में गाँधी और अंबेडकर सहित भगत सिंह, जिन्ना, पेरियार, सुभाषचंद्र बोस आदि जिस भारत की परिकल्पना लेकर स्वाधीनता आंदोलन में आते हैं, वह एक नया राष्ट्रवादी भारत है और यह राष्ट्रवादी भारत ब्रिटिश साम्राज्यवाद सहित, पारम्परिक भारतीय समाज की जड़ स्थापनाओं की भी चूलें हिलाना शुरू कर देता हैं। खासकर, महात्मा गाँधी को लेकर राष्ट्रवादी और प्रगतिशील इतिहासकारों का मानना है कि गाँधी सिर्फ पढ़ी-लिखी, मध्यवर्गीय जनता और साधन सम्पन्न भारतीय जनता का ही स्वाधीनता आंदोलन में नेतृत्त्व नहीं करते हैं, बल्कि गाँव की कृषक जनता का भी अहिंसक नेतृत्त्व भी करते हैं तथा राष्ट्रीय आंदोलन में उन्हें भागीदार बनाते हैं। यद्यपि इस बीच स्वाधीनता आंदोलन बाबा साहब अंबेडकर, भगत सिंह, सुभाषचंद्र बोस आदि एक बड़ी भूमिका निभाते हैं; पर, सन '42 का आंदोलन भारतीय स्वाधीनता आंदोलन में प्रतिरोध की एक नई चेतना लेकर आता है।

वास्तव में 1857 से 1947 के बीच भारतीय राष्ट्रवाद का जो रूप दिखलाई पड़ता है, वह आम जनता के उस राष्ट्रवाद की तरफ संकेत करता है जिसके केंद्र में राष्ट्र-मुक्ति के अलावा और कुछ नहीं है। इस राष्ट्र-मुक्ति का पूरा आधार जनता के व्यापक हित को लेकर निर्मित हुआ है तथा जिसके केंद्र में व्यक्तिगत स्वतंत्रता, समानता और सामाजिक न्याय के साथ ही राष्ट्र का विकास एक महत्वपूर्ण लक्ष्य है। हिन्दी साहित्य अथवा लोक स्मृतियों में दर्ज रचनाएँ भी राजनीतिक मुक्ति की बातें सबसे अधिक करती हैं तथा उसके समानांतर सामाजिक मुक्ति के प्रश्न को तल्ख़ी के साथ उठाती है जिसमें स्त्री तथा दलित मुक्ति का सवाल एक बड़े सवाल के रूप में आता है। यद्यपि भारतीय स्वाधीनता आंदोलन के दौरान राष्ट्रवाद की जो छवियाँ निर्मित होती है, उस पर इतिहासकारों से लेकर अनेक क्षेत्र के बुद्धिजीवियों ने गहन विचार-विमर्श किया है तथा इसी कारण भारतीय इतिहास का यह दौर भारतीय राष्ट्र की एक बुनियाद के रूप में देखा जाता है तथा जिसके ऊपर 1947 के बाद का भारत खड़ा है। यह भारत उतना ही लोकतान्त्रिक और धर्मनिरपेक्ष है जितना कि दुनिया के पटल पर होना चाहिए तथा जिसकी सामूहिक चेतना भारतीय ज्ञान और चिंतन की परम्परा पर केंद्रित है। यह एक महत्वपूर्ण बात है जो आज आज़ादी के पिचहतरवें वर्ष में वैश्विक पटल पर नए तरीके से चिंतन की माँग करती है। ■

ये लेखक बौद्धिक स्तर पर पूरे देश में ब्रिटिश राज के खिलाफ प्रतिरोध की जिस राष्ट्रवादी सामूहिक चेतना का निर्माण करते हैं, उसकी उपस्थिति बाद के भारतीय साहित्य में गहराई के साथ दिखलाई पड़ती है।

संदर्भ

1. P. C. Joshi, ed. 2007_ Rebellion 1857_ National Book Trust, India, Delhi.
2. रश्मि चौधरी; 2012; भारतीय राष्ट्रवाद का निम्नवर्गीय प्रसंग; प्रकाशन संस्थान, दिल्ली।
3. देवेन्द्र चौबे, बद्रीनारायण और हितेन्द्र पटेल, सं.; 2008; 1857: भारत का पहला मुक्ति संघर्ष; प्रकाशन संस्थान, दिल्ली।
4. शाहिद अमीन और ज्ञानेन्द्र पाण्डेय, सं.; 1995 - 2002; निम्नवर्गीय प्रसंग, भाग एक और दो; राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
5. S. N. R. Rizvi_2021_The Rebel World of 1857_Kalpaz Publication, Delhi.
6. बद्रीनारायण, रश्मि चौधरी और संजय नाथ, सं.; 2010; 1857 का महासंग्राम; आधार प्रकाशन, दिल्ली।
7. रश्मि चौधरी और देवेन्द्र चौबे; 2016; आधुनिक भारत के इतिहास लेखन के कुछ साहित्यिक स्रोत; गणपत तेली, वेदिना अक्षयवर और खुशी पटनायक, सं.; प्रकाशन संस्थान, दिल्ली।
8. जगमाल सिंह; 2020; पूर्वोत्तर की जनजातीय क्रांतियां; राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत; दिल्ली।

Elite Academy For Education & Training Pvt. Ltd. ★ Delhi ★

संस्कृत सेवियों का स्वतंत्रता आंदोलन में योगदान

डॉ शंकरलाल शास्त्री

अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए हँसते-हँसते अपने प्राण न्यौछावर करने वाले अमर शहीदों की शहादत को आज पूरा देश आज़ादी के 75 वें वर्ष 'अमृत महोत्सव' के रूप में मना रहा है। भारत की यह पावनी धरा बलिदान भूमि के रूप में भी जानी जाती है। यह वही भूमि है जिसके युगों की जोश भरी हुंकार से शत्रुओं का दर्प भस्मसात् हो जाता है। जिस भूमि के प्रत्येक वर्ण का लाल गुलामी का नाश करने के लिए युद्ध की दहकती आग में कूद पड़ता है। हमारे देश के स्वातंत्र्य चेताओं, साहित्यकारों और समाज सुधारकों के योगदान को चिरस्मरणीय बनाने हेतु आज़ादी के अमृत महोत्सव के रूप में पूरा देश उन्हें अपनी अर्घ्य रूप में अपनी भावभीनी श्रद्धांजलि दे रहा है। भारतवर्ष की एकता, अखंडता और देश प्रेम का सरसराग उस कालखंड के संस्कृत साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं में गूंथकर जन-जन को जगाने का उत्कृष्ट कार्य किया।

साहित्य समाज का दर्पण है। ऐसे में उस कालखंड में देश के हर क्षेत्र के रचनाकारों ने न केवल साहित्य को ही सींचा बल्कि स्वतंत्रता आंदोलन में अपना योगदान देते हुए जेल यात्राएँ भी सहीं। त्रिविक्रम भट्ट के अनुसार-

"किम् कवेस्तेन काव्येन किं काण्डेन धनुष्मत:।"

अर्थात् कवि के उस काव्य से क्या लाभ जो भला पाठक के हृदय को झकझोर न दे?

अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए हँसते-हँसते अपने प्राण न्योछावर करने वाले अमर शहीदों की शहादत को आज पूरा देश आज़ादी के 75 वें वर्ष 'अमृत महोत्सव' के रूप में मना रहा है।

भारत की यह पावनी धरा बलिदान भूमि के रूप में भी जानी जाती है। यह वही भूमि है जिसके युगों की जोश भरी हुंकार से शत्रुओं का दर्प भस्मसात् हो जाता है। जिस भूमि के प्रत्येक वर्ण का लाल गुलामी का नाश करने के लिए युद्ध की दहकती आग में कूद पड़ता है। हमारे देश के स्वातंत्र्य चेताओं, साहित्यकारों और समाज सुधारकों के योगदान को चिरस्मरणीय बनाने हेतु आज़ादी के अमृत महोत्सव के रूप में पूरा देश उन्हें अपनी अर्घ्य रूप में अपनी भावभीनी श्रद्धांजलि दे रहा है। यहाँ ऋग्वेद की यह पंक्ति विशेषत: द्रष्टव्य है -

"अग्ने व्रतपते-व्रतं चरिष्यामि....।" जीवन चाहते हो तो आग के शोले बन जाओ।

भारतवर्ष की एकता, अखंडता और देश प्रेम का सरसराग उस कालखंड के संस्कृत साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं में गूंथकर जन-जन को जगाने का उत्कृष्ट कार्य किया। महाकवि गेटे व ईश्वर चन्द्र विद्यासागर जैसे प्रथम स्वतंत्रता संग्राम से जुड़े बहुत से नाम गिनाए जा सकते हैं। महर्षि अरविंद का वैदिक धर्म के लोप एवं अँग्रेज़ों द्वारा किए गए अमानवीय व्यवहार से उनका हृदय बिलख पड़ता है-

"दुर्दशा दुर्दशां सुदशाऽऽयातु भारतं।"

वे आज़ाद भारत की नींव हेतु संकल्प लेते हैं। यह तथ्य महाकवि मेधाव्रताचार्य विरचित दयानंद दिग्विजय महाकाव्य (जिसका पूर्वार्द्ध बड़ौदा से 1938 ई. में प्रकाशित हुआ वहीं उत्तरार्द्ध का प्रकाशन 1947 ईस्वी में हुआ) में निकल कर सामने आता है। मेधाव्रत जी के विचारों से प्रेरित हो यथाशक्ति आमजन ने अपना योगदान दिया। उस दौरान हमारे देश में पाश्चात्यों और अँग्रेज़ों की दमनकारी नीति का सर्वत्र बोलबाला था। ऐसे में देश का आम नागरिक भारत की आज़ादी के लिए अपने प्राणों की बलि देकर भी राष्ट्र को आज़ाद करवाना चाहता था। चाहे चंपारण का प्रसंग हो या जलियाँवाला बाग आमजन को अँग्रेजों ने जुल्मों-सितम से जनता पीड़ित थी।

वैदिक काल से ही मातृभूमि के प्रति प्रेम, राष्ट्रीय रक्षा और देश के प्रति समर्पण की भावना का उद्घोष "माता भूमि: पुत्रोऽहं पृथिव्या:" में देखने को मिलता है। धरती हमारी माँ है और हम सब माँ के लाड़ली संतानें। ऐसे में हमारा नैतिक धर्म अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए अपना सर्वस्व समर्पित कर देने का ही तो है। धरती माँ का अन्न-जल खा-पीकर इसकी शुद्ध वायु के झोंकों और इसके वृक्षों की घनी छांव में बैठकर हम बड़े हुए हैं। पृथ्वी की महिमा का

लेखक राजस्थान ग्रामोत्थान एवं संस्कृत अनुसंधान संस्थान जयपुर के निदेशक हैं। ईमेल: slshastri07@gmail.com

वर्णन यत्र तत्र सर्वत्र बिखरा है। अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त और ऋग्वेद के 'अरण्यानी' सूक्त (ऋग्वेद.10.146) में भी धरती माँ के वैभव की खूबसूरत झांकी देखने को मिलती है। देश की आज़ादी की कड़ी में 1982 ईस्वी में गाँधी शांति प्रतिष्ठान द्वारा प्रकाशित प्रमुख स्वातंत्र्य चेता वैष्णवाचार्य श्री भगवदाचार्य विरचित 'भारत पारिजातम्', 'पारिजातापहार' जिसमें अँग्रेज़ों भारत छोड़ो आंदोलन (1942) का विशेष वर्णन वर्णित है तथा इसी प्रकार पारिजात सौरभं ग्रंथों में गाँधी जी के योगदान को उकेरा गया है। इसी कड़ी में संस्कृत की प्रख्यात कवयित्री पंडिता क्षमा राव महोदया ने सत्याग्रह गीता (प्रथम संस्करण 1932 में पेरिस से प्रकाशित तथा द्वितीय संस्करण 1956 ईस्वी में मुंबई से प्रकाशित) तथा उत्तर सत्याग्रह गीता (1948 में प्रकाशित) में देश की स्वतंत्रता, मातृभूमि की रक्षा एवं संस्कृत समाज में स्वतंत्रता का संदेश दिया। उनका मानना था कि अँग्रेज़ों की दमनकारी नीति से अच्छा है कि हम मातृभूमि के काम आ सकें।

संस्कृत की प्रख्यात कवयित्री पंडिता क्षमा राव महोदया ने सत्याग्रह गीता (प्रथम संस्करण 1932 में पेरिस से प्रकाशित तथा द्वितीय संस्करण 1956 ईस्वी में मुंबई से प्रकाशित) तथा उत्तर सत्याग्रह गीता (1948 में प्रकाशित) में देश की स्वतंत्रता, मातृभूमि की रक्षा एवं संस्कृत समाज में स्वतंत्रता का संदेश दिया।

उन्होंने कहा है कि गुलामी से भला देश की उन्नति कैसे संभव है- *"पारतंत्र्याभिभूतस्य देशस्याभ्युदय: कुत:?"*

ऐसे स्वतंत्रता से भरे विचारों ने तत्कालीन समाज को झकझोरा। संस्कृत के बहुत से रचनाकारों ने चंद्रशेखर आज़ाद के योगदान को रेखांकित करते हुए संदेश दिया कि चंद्रशेखर की भाँति आप भी आज़ाद बनें। ऐसे ही एक परिचय में आज़ाद कहते हैं- "मेरा नाम आज़ाद है। पिता का नाम स्वतंत्र और निवास कारागृह है।" ऐसे निर्भीक और स्वाभिमानी वचनों ने न्यायाधीश को भी आश्चर्यचकित कर दिया था। एक चर्चित क्रांतिकारी के रूप में चंद्रशेखर आज़ाद स्वयं वाराणसी स्थित संन्यासी संस्कृत महाविद्यालय के छात्र थे तभी से वे स्वतंत्रता के इस महासमर में कूद पड़े थे। वे मात्र 12 वर्ष की छोटी आयु में ही संस्कृत अध्ययन हेतु आए और देश सेवा में अपने आपको समर्पित कर दिया। वैदिक विद्वान् सातवलेकर जी को वैदिक और राष्ट्रीयता से ओतप्रोत प्रकाशित लेख के कारण क्रोधित हुए अँग्रेज़ों ने उन्हें सात वर्ष के कठोर कारावास की सजा सुनाई थी तो भी बिना विचलित हुए वे देश सेवा में लगे रहे।

संस्कृत रचनाकारों से प्रभावित होकर तत्कालीन गुरुकुलीय परम्परा के तहत अध्ययन करने वाले संस्कृत महाविद्यालयों के छात्रों ने उल्लेखनीय योगदान दिया। हरिद्वार गुरुकुल से जुड़े सातवलेकर जी स्वयं स्वतंत्रता की क्रांतिकारी गतिविधियों से छात्रों के साथ जुड़कर राष्ट्र सेवा कर रहे थे। राष्ट्रीय जागरण के अग्रदूत एवं राष्ट्रीय शिक्षा के अमरपुरोधा लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने केसरी पत्र में 'देशस्य दुर्भाग्यं और इमे उपाया: न स्थायिन:' जैसे प्रभावी लेखों के कारण उन्हें अँग्रेज़ों ने छह वर्ष के लिए ब्रर्मा देशीय मांडले नामक कारावास भेज दिया था। कारावास में तपस्वी जीवन व्यतीत करते हुए उन्होंने विश्व विश्रुत 'गीता रहस्य' नामक गीता भाष्य लिखा। 'स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और मैं इसे लेकर ही रहूँगा।' ऐसी दृढ़तापूर्वक उक्ति की वीर ध्वनि गाँव-गाँव और नगर-नगर में फैल चुकी थी। ऐसे राष्ट्र भक्तों पर आधारित संस्कृत वाङ्मय ने उनके योगदान को अपनी वीर रस से ओतप्रोत रचनाओं से अजर अमर बना दिया। उल्लेखनीय है कि बाल गंगाधर तिलक की स्मरणांजलि के रूप में 1956 ई. में तिलक की जन्म शताब्दी मनाई गई थी, जिसमें तिलक के जीवन पर आधारित बहुत से संस्कृत लेखकों ने उनके स्वातंत्र्य योगदान को रेखांकित किया था।

पंडित अंबिकादत्त व्यास विरचित 'शिवराज विजयम्' नामक उपन्यास में महाराज शिवाजी के माध्यम से स्वतंत्रता का बिगुल बजाया है। अँग्रेज़ों की मत्स्य नीति एवं दमन से जनता में घुटन और आक्रोश बढ़ रहा था। अत: पराधीन भारत की कसक पंडित व्यास जी की रचनाओं में झलकती है-

"हा भारत! किम् लुण्ठकैरेव मोक्ष्यसे। हा सनातन धर्म किं विलयमेव यास्यसि। कार्यं वा साधयेयं देहं वा पातयेयं" (करूंगा या मरूंगा) की प्रतिज्ञा करने वाले महाराज शिवाजी ने अपने को दृढ़ प्रतिज्ञा का रूप सार्थक कर दिखाया।

इस कड़ी में हरदोई उत्तर प्रदेश के मथुरा प्रसाद दीक्षित ने भारत विजयम् नाटक के माध्यम से स्वातंत्र्य का शंखनाद फूंका। स्वतंत्रता से जुड़े इस नाटक को अँग्रेज़ों ने ज़ब्त कर लिया था। स्वातंत्र्यवीर विनायक दामोदर सावरकर की रचना 'काला पाणी' में स्वतंत्रता देवी को संबोधित कर उन्हें प्रणाम करते हुए उनके यशोगान और देश की मंगल कामना के साथ अपनी आरंभिक पंक्ति संस्कृत में ही लिखी थी-

"स्वतन्त्रते भगवति त्वामहं यशोयुतां वन्दे।
जयोऽस्तु ते श्रीमहन्मंग्ले शिवास्पदे शुभदे।।"

इसी शृंखला में डॉ. श्रीधर भास्कर वर्णेकर ने भी स्वातंत्र्यवीर विनायक दामोदर सावरकर जी के स्वातंत्र्य योगदान पर आधारित विनायक वैजयंती (1956ई.) में लिखी थी। श्रीधर भास्कर जी का 68 सर्गों में विभक्त शिवराज्योदय महाकाव्य में शिवाजी के हाथों स्वराज्य स्थापना, क्षात्र धर्म व पारतंत्र्य मुक्ति जैसे पक्षों को बड़े सुन्दर ढंग से उकेरा गया है। श्रीधर वर्णेकर का 'विवेकानंद विजयं' प्रसिद्ध नाटक है।

संस्कृत के रचनाकारों ने बाल गंगाधर तिलक, लाला लाजपत राय, बिपिन चंद्र पाल, सुभाष चंद्र बोस, लौह पुरुष सरदार वल्लभभाई पटेल, वीर सावरकर, लक्ष्मी बाई, तात्या टोपे, शहीद भगत सिंह, चंद्रशेखर आज़ाद, स्वामी विवेकानंद, महात्मा गाँधी, छत्रपति शिवाजी, बंकिम चंद्र चट्टोपाध्याय, महाराणा प्रताप, पृथ्वीराज चौहान, मदन मोहन मालवीय, मंगल पांडे व अरविंद घोष जैसे बहुत से राष्ट्र भक्तों पर अपनी रचनाएँ रचीं। इन देशभक्तों ने स्वातंत्र्य की रणभेरी में अपना अविस्मरणीय योगदान दिया। ऐसे ही अमर राष्ट्र नायकों के साथ-साथ उन बलिदानी वीरों की शौर्य गाथाओं को भी अपनी रचनाओं में गूंथा है जिन्होंने निस्वार्थ भाव से अपनी मातृभूमि के लिए अँग्रेज़ी हुकूमत की न जाने कितनी यातनाएँ सही थीं। ऐसे कालखंड में स्वतंत्रता से रूबरू करवाती असंख्य रचनाएँ रची गई थीं।

यथा- धर्मदेव विद्यावाचस्पति की महापुरुष कीर्तनम् (1959 ई. में ज्वालापुर से प्रकाशित), सुप्रसिद्ध विद्वान पांडुरंग शास्त्री की सत्याग्रह कथा, गोवर्धन पीठ के श्री भारती कृष्ण तीर्थ जी ने जेल यात्राएँ सहीं। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के महनीय इतिहास को गलगली पंढरीनाथ आचार्य ने पूर्ण कर स्वतंत्रता की मशाल जलाई। ऐसा उल्लेख ख्यात संस्कृत विद्वान् देवर्षि कलानाथ शास्त्री ने अपने लेखों में किया है। इसी प्रकार स्वतंत्रता सेनानी पंडित दुर्गा दत्त त्रिपाठी ने 'रणभेरी' नामक पत्रिका का श्रीगणेश किया। 'वयं राष्ट्रे जागृयामः पुरोहिता' जैसे शौर्य वचनों को सार्थक सिद्ध किया। उन्होंने 'झंडा ऊँचा रहे हमारा' की तर्ज पर संस्कृत में 'ध्वजो धूयतां धर्म राष्ट्रस्य लोके' की सर्जना की। सत्यदेव वशिष्ठ स्वयं स्वतंत्रता आंदोलन से जुड़े थे, जिन्होंने 1958 ईस्वी में सत्याग्रह नीति काव्य की रचना की थी। तत्कालीन संस्कृत कॉलेज के छात्रों ने राष्ट्र सेवा के लिए निस्वार्थ भाव से अपना योगदान दिया। जयपुर में प्रजामंडल की स्थापना कर स्वातंत्र्य ज्योति की अलख जगाई। जिसे पंडित हीरालाल शास्त्री व पंडित बिहारी लाल शास्त्री जैसे कई विद्वानों ने अपने श्रमजल से सींचा। बांसवाड़ा के संस्कृत सेवी और स्वतंत्रता सेनानी पंडित पन्नालाल जोशी जैसे बहुत से संस्कृत सेवकों व राष्ट्र भक्तों का योगदान अंकनीय है। भारत की यह वीर तपोभूमि कवियों और शूरवीरों की प्रसवित्री भी है।

जैसा कि कहा भी है-

"सुवर्ण पुष्पां पृथ्वीं चिन्वन्ति पुरुषास्त्रयः।
शूरश्च कृतविद्यस्य यश्च जानामि सेवितुम्।।"

काशी के संस्कृत विद्यापीठों का तो इस आंदोलन में सदा चिरस्मरणीय योगदान बना ही रहेगा। इसी भाँति जयपुर का महाराज संस्कृत कॉलेज और देश के अन्य संस्कृत कालेजों के छात्र वर्ग ने भी इस दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किया था। पंडित वैद्यनाथ शास्त्री जैसे न जाने कितने ही विद्वान थे जिन्होंने स्वतंत्रता के लिए अपना योगदान दिया। शास्त्री जैसे विद्वानों ने देश की आज़ादी के लिए हिमालय की गुफाओं से लेकर न जाने कहाँ-कहाँ जाकर यात्राएँ कर समाज को जगाने का कार्य किया। पंडित शिवदत्त शुक्ल, पंडित जय राम शास्त्री ने कई बार जेल यातनाएँ सहीं। 'राष्ट्र काव्य अमृतम' (1956 ईस्वी में प्रकाशित) जैसी रचनाओं के रचयिता पंडित प्रभु दत्त शास्त्री, 'राष्ट्रवाणी' (1952 ईस्वी में आरा बिहार से प्रकाशित) के रचयिता पंडित राम नाथ पाठक आदि ने भी आज़ादी से जुड़ी वैविध्यपरक रचनाएँ रचीं।

संस्कृत रचनाकारों की श्रृंखला में पंडित बटुकनाथ शास्त्रीकृत बांग्लादेश विजय, रतिनाथ झा कृत वीर तरंगिणी, भाण्डारत्र्यम्बक शास्त्री का स्वामी विवेकानंद चरितम, हरिदत्त पालीवाल का भगत सिंह चरितम्, शंखनाद अप्पा शास्त्री राशिवडेकर का पञ्जरबद्ध शुकः जिसका अनुवाद राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने भी किया था। इस रचना में पिंजरे में कैद हुए शुक के माध्यम से परतंत्रता की पीड़ा को आधार बनाया गया है। उन्होंने तत्कालीन संस्कृत चंद्रिका (1905 ई.) में अँग्रेज़ों के द्वारा किए जा रहे अन्याय के विरोध में खूब लिखा। ऐसे में उन्होंने अँग्रेज़ों की बहुत-सी यातनाएँ सहीं तो भी वे संस्कृत चंद्रिका में देश की स्वतंत्रता के लिए कार्य करते रहे।

बिहार के पंडित जानकी वल्लभ शास्त्री, महावीर प्रसाद जोशी, द्वारका प्रसाद त्रिपाठी तथा इसी प्रकार अखिलानंद शर्मा विरचित दयानंद दिग्विजयं (1906 ई.), रमाकांत उपाध्याय कृत दयानंद चरितम्, श्रीनिवास ताडपत्रीकर विरचित गाँधी गीता खंडकाव्य वहीं जोधपुर के ओम् बाबा के नाम से विख्यात पंडित गोपीकृष्ण व्यास ने 'अँग्रेज़ो भारत छोड़ो आंदोलन 1942' में जेल यात्राएँ सहीं थीं। ओम् बाबा के जीवन पर वीर सावरकर की छाप स्पष्टतः दिखाई देती है। संस्कृत कॉलेज जयपुर के तत्कालीन प्राचार्य पंडित चंद्रशेखर शास्त्री जो बाद में जगद्गुरु श्री निरंजन देव तीर्थ के नाम से जाने गए। इस कड़ी में स्वामी करपात्री जी महाराज जैसे विद्वानों का योगदान विस्मृत नहीं किया जा सकता। संस्कृत रत्नाकर और बाद में भारती संस्कृत पत्रिका के संपादक रहे भट्टश्री मथुरानाथ शास्त्री ने पृथ्वीराज पौरुषं, सिंह दुर्गे सिंह वियोगः एवं सामंत संग्रामः जैसी वीरता पूर्ण कथाएँ रचीं साथ ही स्वतंत्रता से ओतप्रोत रचनाओं से समाज को नई दिशा दी। कवि की भारत विभाजन रूपी वेदना कुछ यूँ फूट पड़ी है-

भारतमिदमति चिरात् पुराभूत् पूर्ण स्वतंत्रं।

जोधपुर के पंडित श्री राम दवे ने न केवल संस्कृत सर्जना ही की बल्कि आंदोलन से भी जुड़े। बीकानेर के पंडित फाल्गुन भट्ट ने जय भारतादर्श चंपू काव्य की रचना की वहीं भारती जयपुर के प्रबंध संपादक रहे श्री गिरिराज शास्त्री दादा ने राष्ट्र सेवा के लिए जेल यात्राएँ सहीं तथा संस्कृत सेवा के लिए स्वयं को समर्पित किया।

इसी प्रकार पंडित विष्णु दत्त शुक्ल ने असहयोग आंदोलन के साथ स्वातंत्र्य से ओतप्रोत रचनाओं से युवाओं में जोश भरा। राष्ट्रवेद के रचयिता पंडित नवल किशोर कांकर, देवकीनंदन शर्मा कृत राष्ट्रभक्तपंचकम् सहित कई हिंदी कवि के रूप में जाने जाने वाले नागार्जुन ने भी संस्कृत रचनाओं से स्वतंत्रता के लिए युवा पीढ़ी को अपने संदेशों से राष्ट्र सेवा के लिए प्रेरित किया। हिंदी में 'उसने कहा था' की प्रसिद्ध रचना के रचनाकार पंडित चंद्रधर शर्मा गुलेरी ने भी संस्कृत में स्वातंत्र्य से जुड़ी रचनाएँ रचीं। उन्होंने प्रथम विश्वयुद्ध को लक्ष्य कर लिखा है-

धर्माय युध्यति चमूर्नृपजार्ज भक्ता।
तस्यै जयं परम कारुणिकं प्रयच्छ।।

पंडित मदन मोहन मालवीय के आदेश पर उन्होंने 1920 से 1922 तक हिंदू विश्वविद्यालय में संस्कृत अध्यापन का कार्य भी किया था। सन् 1905 में प्रकाशित 'समालोचक' पत्र में गुलेरी जी ने लिखा है कि विदेशी की अपेक्षा स्वदेशी उत्तम है। अर्थात् विदेशी वस्तुओं की होली जलने पर ही हमें मोक्ष प्राप्ति संभव है। जैसा कि उन्होंने लिखा है-

विदेशवस्तुनिर्मुक्तिःकथं मे स्यात्कदा विधे।
इति या सुदृढा बुद्धिर्वक्तव्या सा मुमुक्षता।।

विधु शेखर भट्टाचार्य (भारत भूमिः, उद्बोधनं आदि), महादेव शास्त्री, डॉ वेंकटराघवन (स्वराज्य केतुः) राम कृष्ण भट्ट (स्वातंत्र्य ज्योतिः) पीलीभीत में पैदा हुए और काशी से अध्ययन कर राष्ट्र सेवा में लगे संस्कृत सेवी क्षेमानन्द जिन्हें बाद में भगवतदास स्वामी के नाम से जाना गया। इसी भाँति हरिदास सिद्धांत वागीश का शिवाजी चरितम् सहित ऐसी असंख्य रचनाएँ रची गई हैं। इस प्रकार के गत एक शताब्दी में बहुत से प्रकाशन हमारे सामने आए हैं। राजस्थान संस्कृत अकादमी का 'स्वातंत्र्य सहयोगिनः' ग्रंथ जैसी कई रचनाएँ उल्लेखनीय हैं। केशव गोपालकृत तिलक सौभाग्यं, यमुना दत्त शास्त्री का वीर तरंगरंगम्, शिव गोविंद त्रिपाठीकृत गांधी गौरवं, काशी नाथ पांडेय चंद्रमौलि प्रणीत श्रीमद् जवाहरयशोविजयं इसी प्रकार बांग्लादेश

विजयम्, प्रताप सिंहीयम्, प्रताप सिंह चरितम्, धन्या ममेयं धरा, संधानम्, भाति में भारतम, भारतीय रत्न चरितम्, स्वातंत्र्य ज्योतिः, मधुपर्णी, गाँधी गौरवम्, लेनिनामृतम् सहित बहुत-सी स्वतंत्रता से ओतप्रोत रचनाएँ अंकनीय हैं।

भारत सरकार के प्रकाशन विभाग ने हिंदी भाषा में 'भगत सिंह: अद्वितीय व्यक्तित्व' का चार खंडों में स्तरीय प्रकाशन किया है। इसी प्रकार महात्मा गाँधी सहित अन्य आज़ादी के क्रांतिकारियों व स्वाधीनता सेनानियों के ग्रंथ संग्रहणीय हैं।

वस्तुतः स्वातंत्र्य ही तो हमारे सुख, आनंद और उल्लास का महापर्व है। वहीं गुलामी महान संकट का-

"स्वातंत्र्य परमं सुखं पारतंत्र्यं महद् दुःखं।"

उस कालखंड में संस्कृत पत्रकारिता ने भी स्वतंत्रता की मशाल जलाई। 1832 ईस्वी में बंगाल की रायल एशियाटिक सोसायटी की शोध पत्रिका प्रकाशित हुई, जिसमें अँग्रेज़ी एवं संस्कृत दोनों भाषाओं के लेख होते थे किंतु संस्कृत की सर्वप्रथम पत्रिका 1866 ईस्वी में वाराणसी से 'काशी विद्या सुधा निधि (1866-1917)' पत्रिका प्रकाशित हुई तथा 1893 में बंगाल से 'संस्कृत चंद्रिका' नामक पत्रिका प्रकाशित हुई। जयपुर, राजस्थान से 'संस्कृत रत्नाकर' नामक मासिक पत्रिका का श्रीगणेश 1904 में प्रारंभ होकर 1949 तक चला। इस पत्रिका का मध्य में अवसान भी हुआ और भिन्न-भिन्न स्थानों से 1949 तक प्रकाशन भी हुआ। कालांतर में यही पत्र अखिल भारतीय संस्कृत साहित्य सम्मेलन का मुखपत्र बना। उस दौरान देश के विभिन्न स्थानों से सुनृतवादिनी, मंजूभाषिणी, संस्कृत साकेतम्, संस्कृतम्, देववाणी, मंजूषा, अमर भारती, सूर्योदय व सुप्रभातम् जैसी कई पत्रिकाएँ चिरस्मरणीय कही जा सकती हैं। इसी प्रकार से कई अन्य पत्रिकाओं और इनके संपादकों का योगदान भी विस्मृत नहीं किया जा सकता। ■

संदर्भ

1. नल चम्पू
2. तैत्तिरीयोपनिषद्
3. दयानंद दिग्विजय महाकाव्यम्
4. उत्तर सत्याग्रह गीता
5. गीता रहस्य
6. गाँधी गौरवम्
7. भारत विजयं नाटकम्
8. शिवराजविजयम्
9. शिवराज्योदय महाकाव्यम्
10. चंद्रशेखर आज़ाद
11. स्वातंत्र्य सहयोगिन
12. शुक्र नीति
13. महाभारत वन पर्व
14. राजस्थान के संस्कृत कृतिकार
15. मञ्जूनाथ ग्रंथावलि (1-5)
16. चंद्रधर शर्मा गुलेरी
17. विद्याधर ग्रंथावलि
18. साहित्य मंदाकिनी
19. नीतिशतकम्
20. कथा मञ्जरी

Elite Academy For Education & Training Pvt. Ltd. ★ Delhi ★

डॉ. मनोज छापड़िया

IAS/PCS मुख्य परीक्षा (हिन्दी माध्यम) आनलाइन प्रोग्राम

गुणवत्तापरक मार्गदर्शन के लिए प्रतिबद्ध

MANOJ CHHAPARIA

समाजशास्त्र

- सम्पूर्ण पाठ्यक्रम प्रोग्राम (अवधि 5 माह)
- क्लासरूम नोट्स व पीडीएफ स्टडी मैटेरियल
- प्रथम पेपर को द्वितीय पेपर से इन्टररिलेट करना।
- दोनो पेपर के उत्तरों में सम-सामायिक घटनाओं को शामिल करने की कला का सत्र।
- प्रश्नों की नवीन प्रवृत्ति को दृष्टिगत रखते हुए प्रभावकारी एवं अंकदायी उत्तर लेखन का अलग सत्र।
- आवश्यकता के अनुरूप छापड़िया सर से सीधे संवाद की सुविधा।
- प्रत्येक यूनिट के बाद टेस्ट व मूल्यांकन

सामान्य अध्ययन

पेपर 1 : भारतीय समाज
पेपर 2 : सामाजिक न्याय एवं विकासात्मक कार्यक्रम
पेपर 3 : आन्तरिक सुरक्षा
पेपर 4 : एथिक्स

CSAT (पूरा कोर्स केवल 40 दिनों में)
(अंग्रेजी व हिन्दी माध्यम)

अधिक जानकारी व पंजीकरण के लिए संपर्क करें :
7275403646 (10 am to 6 pm)
E-mail : upscsocioaspiration@gmail.com

डॉ. ज्योति अग्रवाल

YH-1986/2022

उर्दू अदब की भूमिका

डॉ नरेश

भौगोलिक इकाई होने के बावजूद, ईस्ट इंडिया कंपनी के आगमन से पहले, भारत के बाशिंदों में राष्ट्रवाद की भावना की कमी थी और वह समूचे भारत को नहीं बल्कि अपने रिहाइशी राज्यों को ही अपना देश मानते थे। उस दौरान भारत में छह सौ से अधिक रियासत थे। मुग़ल साम्राज्य के बाद और कंपनी के प्रत्यक्ष/परोक्ष दख़ल से, भारतीय रियासतें कंपनी की कूटनीति और सैन्यशक्ति का शिकार होती चली गई, जिसका नतीजा भारत में ब्रिटिश शासन के रूप में सामने आया।

1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम से कहीं पहले, क़ानून-व्यवस्था, व्यापक भ्रष्टाचार और चिरकालिक मानवीय मूल्यों में गिरावट के बारे में उर्दू के शायर अपनी नाराज़गी जाहिर करते आए थे। उन्होंने 'शहर-ए-आशोब' की रचना ना सिर्फ तत्कालीन सामाजिक-राजनीतिक ज़मीनी सच्चाई को दर्ज करने के लिए, बल्कि उस समय के स्थायी राजनीतिक हालात के संबंध में अपनी नाराज़गी दर्ज कराने के लिए की थी। शाह हातिम, अशरफ़ अली फुग़ाँ, मोहम्मद रफी सौदा, मीर तक़ी मीर जैसे शायरों द्वारा क़लमबद्ध शहर-ए-आशोब ने बिगड़ते सियासी हालात और राजगद्दियों पर बैठे रजवाड़ों की कड़ी आलोचना थी।

1857 से एक सदी पहले, शाह आलम द्वितीय, मीर क़ासिम और वज़ीर-ए-अवध शुजा-उद्-दौला की 1757 की लड़ाई में और 1799 में श्रीरंगपट्टणम में टीपू सुल्तान की हार और मौत के बाद, उर्दू शायरी में राष्ट्रवाद आकार लेने लगा था। उस वक्त की कई कविताओं में टीपू सुल्तान की मौत पर अफसोस जताया गया था।

1857 के पहले स्वतंत्रता संघर्ष उथल-पुथल से भरा था क्योंकि उसने कंपनी द्वारा स्थानीय उद्योगों को बर्बाद करने और यहाँ के धार्मिक मामलों में छेड़छाड़ के प्रयास किए गए थे, जिस पर उर्दू शायरों का गुस्सा फूटा था। अँग्रेज़ों के हाथों भारतीय क्राँतिकारियों की हार के बाद बदले और नृशंस हत्याओं का दौर रुक गया था। आत्म-बलिदान के लिए हिम्मत और बहादुरी के जज़्बे को उकेरने वाली शायरी लिखने वाले कई शायरों को अँग्रेज़ों ने फाँसी पर लटकाया था। इनमें रहीम-उद्-दीन इजाद, ज़फरयाब रसीख देहलवी, ग़ज़नफर सईद, अज़ीज़ देहली, सुरूर गुरगानवी, गयासुद्दीन शरर, क़मर-उद्-दीन शाइदा, हादी सम्बाली और इस्माइल फौक के साथ कई अन्य थे।

इंकलाबी शायरी नहीं करने वाले कई अन्य कवि भी अँग्रेज़ों के खिलाफ जंग के मैदान में कूदे थे। जनरल बख़्त खान के साथ अज़ीज़ मोरादाबादी ने भी मैदाने-जंग में अपनी तलवार भांजी थी। अँग्रेज़ों के खिलाफ मैदाने-जंग में सरज़मी की आन के लिए अज़ीज़ के बाद रुसवा बदायूँनी नामक एक अन्य उर्दू शायर ने भी अपनी जान दी थी।

19वीं सदी के अंत में स्वतंत्रता अभियान की सरपरस्त के तौर

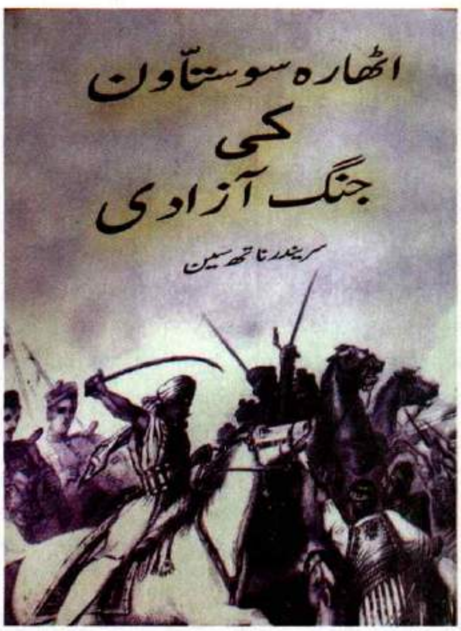

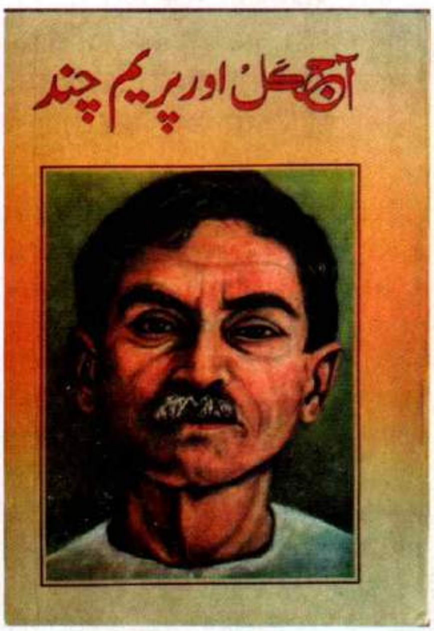

लेखक पंजाब यूनिवर्सिटी में आधुनिक साहित्य के प्रोफेसर और चंडीगढ़ एकेडमी ऑफ लेटर्स के अध्यक्ष हैं। ईमेल: dr.naresh.chd@gmail.com

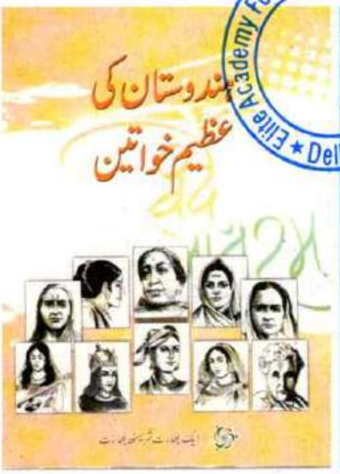

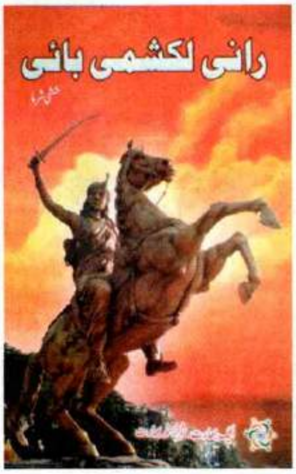

पर भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस बड़े राजनीतिक दल के तौर पर उभरी। कई उर्दू शायरों और अख़बारनवीसों ने अपनी कलम से अभियान में सहयोग दिया था। मुंशी सज्जाद हुसैन, मिर्ज़ा मच्छू बेग़, रतन नाथ सरशार, त्रिभुवन नाथ सप्रू 'हिज्र', ब्रज नारायण 'चकबस्त', अल्ताफ़ हुसैन हाली, अकबर इलाहाबादी और इस्माइल मेरठी ने खुद को भारतीय संस्कृति और स्वतंत्रता के साहित्यिक सूत्रधारों के तौर पर स्थापित किया था।

1906 में भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस ने कलकत्ता सत्र के दौरान स्वराज की मांग और विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार का आह्वान किया था। उसी बरस, बंगाल में शुरू हुआ क्राँतिकारी अभियान कुछ ही अरसे में समूचे उत्तर भारत में फैल गया था। इस दौरान, हसरत मोहानी, चकबस्त, ज़फर अली खान, बर्क देहलवी ने राष्ट्रवाद को हवा दी और मौलाना शिबली ने अँग्रेज़ों पर जोरदार हमला बोला। होमरूल विरोध, रॉलेट एक्ट (1918) और जलियाँवाला बाग़ नरसंहार (1919) के दौरान मोहम्मद अली जौहर, डॉ. इक़बाल, मीर ग़ुलाम भीक नैरंग, आग़ा हश्र कश्मीरी और एहसान दानिश आज़ादी आंदोलन को अपने-अपने तौर पर आगे लेकर गए और आमजन में असीम उत्साह जगाया था। 20वीं सदी के तीसरे दशक में त्रिलोक चंद महरूम, जोश मलीहाबादी, रवीश सिद्दीक़ी, हफ़ीज़ जालंधरी, मेला राम वफ़ा, आनंद नारायण मुल्ला, एहसान दानिश, अली जवाद ज़ैदी, आज़ाद अन्सारी जैसे कई उर्दू शायरों ने खुलकर आज़ादी आंदोलन को सहयोग दिया और अपने पाठकों के दिलों में विदेशी शासन के खिलाफ नफ़रत भर दी थी।

1936 में प्रोग्रेसिव राइटर्स मूवमेंट का आग़ाज़ हुआ था, जिसने ब्रिटिश शासन के खिलाफ सख़्ती दिखाते हुए स्वतंत्रता आंदोलन का पुरज़ोर समर्थन किया था। उर्दू समाचार-पत्रों और पत्रिकाओं में हज़ारों कविताएं, लघुकथाएं, उपन्यास और आलेखों की बाढ़ आई और अदबी फ़लक़ पर उर्दू के कई शायर उभर कर आए थे। असरार-उल-हक़, फ़ैज़ अहमद 'फ़ैज़', जांनिसार अख़्तर, मोईन अहसान जज़्बी, मख़दूम मोहीउद्दीन, अली सरदार जाफ़री और कैफ़ी आज़मी ने भारत की आज़ादी के लक्ष्य के साथ भारतीय समाज की सामाजिक-आर्थिक समस्याओं को भी बुना था।

1936 में प्रोग्रेसिव राइटर्स मूवमेंट का आग़ाज़ हुआ था, जिसने ब्रिटिश शासन के खिलाफ सख़्ती दिखाते हुए स्वतंत्रता आंदोलन का पुरज़ोर समर्थन किया था। उर्दू समाचार-पत्रों और पत्रिकाओं में हज़ारों कविताएं, लघुकथाएं, उपन्यास और आलेखों की बाढ़ आई और अदबी फ़लक़ पर उर्दू के कई शायर उभर कर आए थे।

मोहम्मद अली जिन्ना की द्विराष्ट्र और बँटवारे की नीति के खिलाफ अच्छा-खासा उर्दू साहित्य उपलब्ध है। राष्ट्र की शान में लिखी हुई कई ग़ज़लें/नज़्में भी मिलती हैं।

राष्ट्रीय गौरव का यह तेज़ उफान सिर्फ उर्दू शायरी तक ही सीमित नहीं है। उर्दू गद्य ने भी विदेशी शासन के खिलाफ विद्रोह और नाराज़गी को खुलकर जाहिर किया। उर्दू रिसालों में भी इस विषय पर संपादकीय और आलेखों की भरमार मिलती है। यहाँ दो ऐसे ही समाचार-पत्रों का ज़िक्र ज़रूरी है। ये हैं, मौलवी मोहम्मद बक्र का 'उर्दू अखबार' और अज़ीमुल्लाह खान का 'पयाम-ए-आज़ादी'। इन समाचार-पत्रों ने भारतीयों के दिमागों पर कितना गहरा असर डाला था, इसका अंदाज़ा इसी से मिलता है कि शासकों ने बक्र अली का घर लूटकर उन्हें मार डाला था। इतना ही नहीं, जिस घर से 'पयाम-ए-आज़ादी' की एक प्रति भी बरामद हो, अँग्रेज़ अपराध कहते हुए उस घर को ही धराशायी कर डालते थे।

सर सैय्यद अहमद खान, मौलाना हाली और शिबली नोमानी के लेखों ने अपने पाठकों को जागृत करने और राष्ट्र-निर्माण की दिशा में काम किया था। पहले गाँधी की प्रेरणा और फिर प्रगतिशील लेखक संघ से प्रभावित होकर, मुंशी प्रेमचंद गहरे तक राष्ट्रवादी थे। अँग्रेज़ सरकार ने 'सोज़-ए-वतन' नामक उनका पहला लघुकथा संग्रह प्रतिबंधित कर उसकी प्रतियाँ जलाने के लिए इकट्ठा की थीं। रशीद-उल-खैरी, अज़ीम बेग़ चुग़ताई, सुदर्शन फाकिर, अली अब्बास हुसैनी, सोहेल अज़ीमाबादी और अख़्तर ओरेन्वी जैसे उर्दू अफ़साना-निगारों ने भारत की आज़ादी के संदेश को अपनी लेखनी के ज़रिए आगे बढ़ाने का काम किया था।

अगली पीढ़ी में सादत हसन मंटो, कृष्ण चंदर, अख़्तर अंसारी, उपेंद्र नाथ अश्क, हयातुल्ला अन्सारी, इस्मत चुग़ताई और राजिन्दर सिंह बेदी जैसे जाने-माने उर्दू कहानीकारों के नाम आते हैं। विदेशी राज से आज़ादी और एक नई धर्मनिरपेक्ष सामाजिक व्यवस्था की स्थापना के लिए इन लेखकों की अवधारणा सुनिश्चित नज़र आती है।

उर्दू भाषा ने ही भारतीय जनमानस को 'इंक़लाब ज़िंदाबाद' का नारा दिया था। सुभाष चंद्र बोस ने उर्दू में ही ''तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आज़ादी दूँगा'' का नारा बुलंद किया था।

लेख का अंत मैं आज़ादी के आंदोलन के दौर में लोकप्रिय एक शेर से करता हूँ :

''सरफ़रोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है
देखना है ज़ोर कितना बाज़ू-ए-क़ातिल में है।'' ■

Elite Academy For Education & Training Pvt. Ltd. ★ Delhi ★

समकालीन स्त्री-लेखन

डॉ गरिमा श्रीवास्तव

19वीं सदी के उत्तरार्ध और 20वीं सदी के पूर्वार्द्ध के भारत का राजनीतिक परिदृश्य जटिल और परस्पर विरोधी तत्वों से मिल कर बना था। समकालीन रचनाकारों की वैचारिकता के निर्माण में भाषायी, साम्प्रदायिक विमर्श और पितृसत्ता की भूमिका थी। इसी दौर में यह अनुभव किया जा रहा था कि अशिक्षा भारतीय समाज के पतन का मूल कारण है। ज्ञान की प्राप्ति को भारतीय समाज की सभी बुराइयों के इलाज के रूप में देखा जाने लगा और अज्ञानता की जगह ज्ञान, अशिक्षा की जगह शिक्षा और अन्धविश्वास की जगह तार्किकता की बात की जाने लगी।

समाज सुधारकों का मानना था कि आम जनता को यदि शिक्षित करना है तो देशी भाषाएँ ही इसका माध्यम बन सकती हैं।[1] उन्नीसवीं सदी के इस दौर की राजनीति में 'स्त्री-प्रश्न' उभार पर था और राजनीति और जेण्डर दोनों परस्पर असम्बद्ध नहीं, बल्कि कई स्तरों पर सम्बद्ध थे। पश्चिमी रहन-सहन के साथ औपनिवेशिक जीवन-शैली के संघर्ष और स्त्री-प्रश्न पर वैचारिक अंतराल ने रचनाकारों को टकराने-जूझने का अवसर दिया। ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन-व्यवस्था ने एक नव्य- पितृसत्तात्मक व्यवस्था को जन्म दिया। इस व्यवस्था ने शिक्षा द्वारा नयी स्त्री-छवि का आदर्श सामने रखा। पार्थ चटर्जी के मुताबिक "इस नयी स्त्री को अपने ही समाज के पुरुषों और पश्चिमी स्त्री से भिन्न होना था।"[2] उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध तक आते-आते भारतीय बौद्धिकों को यह चिंता भी थी कि स्त्रियों को जैसी दरकार है वैसी शिक्षा मिल नहीं पा रही है। इस मुद्दे पर परस्पर असहमति भी थी। मसलन बंगीय महिला की भूमिका में तारकनाथ विश्वास ने लिखा, "ऐसी बहुत कम पुस्तकें आयी हैं, जो स्त्रियों के पढ़ने लायक है, या जिन्हें पति अपनी पत्नी को पढ़ने के लिए दे सकें।"[3] रमाबाई ने हिन्दू स्त्री का जीवन में अमेरिकी पाठकों का आह्वान करते हुए लिखा- "आप सभी जो इस पुस्तक को पढ़ रहे हैं, मेरे देश की स्त्रियों के बारे में सोचिए और जागिए, एक सामान्य भाव से उन्हें आजीवन दासता एवं नारकीय दु:खों से मुक्त करने के लिए आगे बढ़िए। क्या आप नहीं आएँगे? मित्रों और हितैषी लोगो, शिक्षित जनों एवं मानवतावादियों, मैं आपसे प्रार्थना करती हूँ कि आप सभी जो इसमें रुचि रखते हों या अपने साथी के प्रति दया रखते हों भारतीय पुत्रियों के रुदन से चीखें चाहे वह क्षीण ही क्यों न हो।"[4]

स्त्री के आत्मकथ्य का विश्लेषण उसके समाज, समुदाय, पीड़ा, चोट, लिंग भेद के अनुभव मनोसामाजिकी और भाषा भंगिमाओं को सामने लाने में मदद करता है। हाल के वर्षों में सांस्कृतिक इतिहास की दरारों और उसकी असंगतियों के उच्छेदन के लिए स्त्री-लेखन को शोध और पुनर्विचार के लिए महत्वपूर्ण माना जाने लगा है।

भारत में, 1920 के आसपास आभिजात्य घरानों की मुसलमान स्त्रियाँ अँग्रेज़ी पढ़ने की ओर उन्मुख हुईं। शिक्षा के इस नए दौर ने पढ़ी-लिखी स्त्रियों का एक ऐसा वर्ग बनाया जिसमें मुहम्मदी बेगम, नज़र सज्जाद हैदर, अब्बासी बेगम जैसी स्त्रियाँ को देखा जा सकता है, जिन्होंने रिसालों में लिखना और छपना शुरू कर दिया था। स्त्री रचनाकारों के अब तक उपेक्षित गद्य, पत्रों, डायरियों, कविताओं यात्रा-वृत्तांतों को देखकर पता चलता है कि वे अपने समय और समाज के घटनाचक्रों के साथ-साथ निजी अनुभवों को भी अभिव्यक्त कर रही थीं।

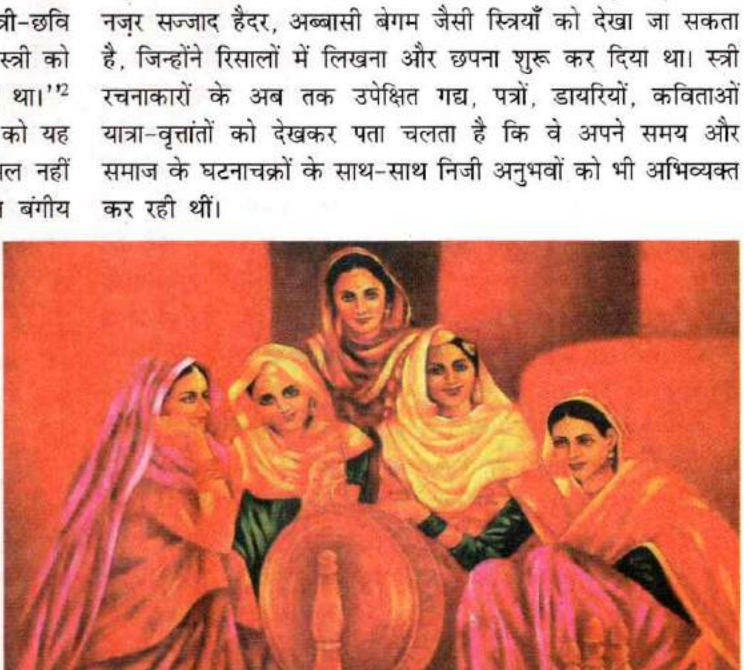

लेखिका जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के भारतीय भाषा केंद्र में प्रोफेसर हैं। ईमेल: drgarima@gmail.com

आबिदा सुल्तान की दादी भोपाल की बेगम सुल्तानजहाँ की आत्मकथा तीन भागों में उर्दू और अँग्रेज़ी में प्रकाशित हुई, जो औपनिवेशिक सत्ता, राष्ट्रवादी विचारधारा के उदय और सामाजिक धार्मिक सुधार आंदोलनों के समानान्तर और परस्पर प्रतिच्छेदी धाराओं से टकराती दिखती है। सुल्तानजहाँ बेगम 1901-1926 के बीच भोपाल रियासत की सुल्तान रहीं।

अल हिजाब में उन्होंने मुसलमान स्त्रियों को पर्दे और हिजाब में रहने की नसीहत दी और नवजागरण के अन्य समाजसुधारकों से अपने-आपको पर्दे के मसले पर अलगाने की कोशिश की, साथ ही पाश्चात्य सभ्यता की तुलना में उन्होंने इस्लामिक रीति-रिवाजों को प्रस्थापित किया। यह ग़ौर करने की बात है कि भोपाल रियासत की अधिकतर शासिकाओं ने आत्मकथा लिखी। आत्माभिव्यक्ति के लिए इन आभिजात्य स्त्रियों ने कई विधाएँ अपनायीं। शाहजहाँ बेगम (1838-1901) ने स्त्रियों को आचरण सिखाने के लिए 'तहज़ीब-उन निस्वान वा तरबीयत उल इंसान' (1889) लिखी।

स्त्री के आत्मकथ्य का विश्लेषण उसके समाज, समुदाय, पीड़ा, चोट, लिंग भेद के अनुभव मनोसामाजिकी और भाषा भंगिमाओं को सामने लाने में मदद करता है। हाल के वर्षों में सांस्कृतिक इतिहास की दरारों और उसकी असंगतियों के उच्छेदन के लिए स्त्री-लेखन को शोध और पुनर्विचार के लिए महत्वपूर्ण माना जाने लगा है।

देश को स्वतंत्रता तो मिली लेकिन विभाजन की घटना ने स्त्री-पुरुष दोनों को प्रभावित किया। देश-विभाजन, पुनर्स्थापन, धर्म और सांप्रदायिकता के आधार पर नागरिकों के विभाजन के सबके अपने पाठ थे। विभाजन की घटना ने राजनीतिक परिदृश्य पर जो परिवर्तन उपस्थित किए उनका भारत और पाकिस्तान की स्त्रियों पर गहरा प्रभाव पड़ा, इस दौर में आत्मकथा लेखन में अप्रत्याशित तेज़ी देखी गयी। सबके पास अपनी-अपनी चुनौतियाँ और संघर्ष थे।

'गुब्बार-ए-कारवां' बेगम अनीस किदवई (1906-1982) ने लिखी, जो अधूरी ही मकतब-ए-जामिया, दिल्ली से 1983 में मूल उर्दू में छपी। उत्तर प्रदेश के बाराबंकी की रहने वाली अनीस ने 'आज़ादी की छाँव में' (1949) शीर्षक संस्मरण जिसमें अनीस किदवई भारत-पाकिस्तान विभाजन के दौरान हुए दंगों और शरणार्थियों की समस्या का आँखों देखा ब्यौरा प्रस्तुत करती हैं। **'गुबार-ए-कारवाँ' और 'आज़ादी की छाँव में' - स्त्री के बतौर अभिकर्ता स्थापित होने की यात्रा है। भारतीय राजनीति में भारत विभाजन के दौर में आये कई परिवर्तनों का ज़िक्र है। अनीस किदवई ने एक ओर देश विभाजन के पहले और बाद के सामाजिक-राजनीतिक हालातों का जायज़ा लिया है, तो दूसरी ओर मुस्लिम होने के नाते शिक्षा ग्रहण करने और जीवन की धारा का निर्णय करने के लिए परिवार पर निर्भरता और स्त्री होने के कारण स्वयं पर पड़ने वाले सामाजिक, पारिवारिक दबावों, जेंडर की राजनीति, सेंसरशिप का ज़िक्र किया गया है। एक स्त्री की दृष्टि से आज़ादी के आसपास के वर्षों में भारत-पाकिस्तान को देखने का यह अपनी तरह का पहला उल्लेखनीय प्रयास है।**

राजनीति में सक्रिय बेगम कुदसिया एजाज़ रसूल (जन्म 1908) की आत्मकथा 'फ्रॉम पर्दा टू पार्लियामेंट' ब्रिटिश औपनिवेशिक सत्ता के अनुभव उनकी किताब में दर्ज हैं। एक मुस्लिम लड़की जिसका लालन-पालन एक आभिजात्य और राजनीतिक रूप से सक्रिय परिवार में हुआ, उसने कैसे परदे के बावजूद पाकिस्तान मूवमेंट का अंग बनकर अपनी पहचान बनाई। कुदसिया ने 1937 से 1940 तक काउन्सिल के उपप्रधान के तौर पर काम किया। वह पहली भारतीय मुस्लिम स्त्री थीं जो इतने ऊँचे पद तक पहुँचने में कामयाब हुई। उनकी आत्मकथा इसलिए महत्वपूर्ण है, क्योंकि पितृसत्तात्मक समाज में नेतृत्वकारी क्षमता वाली स्त्रियों के अनुभव और क्षमता का उपयोग का प्रतिशत बहुत कम है।

स्वतंत्रता के बाद की स्त्री आत्मकथाएँ इसके साहित्यिक साक्ष्यों के रूप में देखी जा सकती हैं, जो यह बताती हैं कि समाज का स्त्रियों को और स्त्रियों का समाज को देखने का नज़रिया कैसा है, साथ ही स्त्री के आसपास घटने वाले सामाजिक-राजनीतिक परिवर्तनों के प्रति स्त्रियाँ क्या सोचती हैं। पाकिस्तान चली गयी औरतों के आत्मकथ्यों में, सामाजिक परिवर्तनों की भूमिका और स्त्री मुक्ति की इच्छा को देखा जा सकता है। एक तरफ ये स्वयं को मुक्त करने की दिशा में प्रयासरत दिखाई देती हैं दूसरी तरफ समाज में अपनी पहचान बनाने की कोशिश करती है। इन आत्मानुभवों को पढ़ने से इन स्त्रियों की टकराहटें- चाहे वे समाज के साथ हों, परिवार के साथ हों या स्वयं के साथ हों, के साथ-साथ व्यक्तित्व के अंतर्विरोधों की भी परतें खुलती हैं। वे कौन से कारण हैं कि कोई स्त्री आत्मकथा जैसी विधा का चुनाव करती है, जो भी उस आत्मकथ्य को पढ़ता है वह साहित्य-सजग मुद्रा को सराहे बिना नहीं रह सकता। ऐसा टेक्स्ट जो निजी और सार्वजनिक के बीच मध्यस्थता कर सके और साथ ही स्वानुभवों को भी व्यक्त कर सकें।

जहाँ प्रारम्भ में ये स्त्रियाँ अभिव्यक्ति के लिए व्याकुल दिखती हैं, साक्षर बनने के लिए, छपने की जद्दोजहद करती दिखाई देती हैं वहीं नब्बे के दशक के बाद उनमें बदलाव को रेखांकित किया जा सकता है, अब वे शिक्षा प्राप्त कर चुकी हैं। देश-विभाजन, विस्थापन ने उन्हें अनुभव-परिपक्व बना दिया है, इसलिए अब वे अपने गद्य में पात्रों को रचती हैं। इन स्त्रियों का आत्मकथा विधा में लेखन राष्ट्र-आख्यान से स्वयं को जोड़ने और इतिहास की धारा में स्वयं को जीवंत ऐतिहासिक चरित्रों के रूप में पहचाने जाने के प्रयास के रूप में देखा जाना चाहिए। ■

Elite Academy & Training Pvt. Ltd. Delhi

संदर्भ

1. सैय्यद अहमद खां ने इस विचार को जोरदार शब्दों में व्यक्त करते हुए कहा था- "इंग्लैण्ड की सभ्यता का कारण यह है कि सभी कलाएँ और विज्ञान देश की भाषा में हैं, जो लोग भारत की स्थिति में सुधार करने को कटिबद्ध हैं, उन्हें यह याद रखना चाहिए कि इस ध्येय को पूरा करने का एकमात्र रास्ता यही है कि हम सभी कलाओं और विज्ञानों को अपनी भाषा में अनूदित करवाएँ। शान मुहम्मद (स.) राइटिंग्स एँड स्पीचेस आफ सर सैय्यद अहमद खां, पृष्ठ 231-32
2. पार्थ चटर्जी (1989) कॉलॅनाइज़ेशन, नैशनलिज़्म ऐंड कॉलॅनाइज़्ड वुमॅनः द कंटेस्ट इन इण्डिय, अमेरिकन
3. तारकनाथ विश्वास (1887), बंगीय महिला, द्वितीय सं., प्र. राजेंद्रलाल विश्वास, कलकत्ता
4. पण्डिता रमाबाई (2006), हिन्दू स्त्री का जीवन, हिंदी अनुवाद, सम्पादन शम्भू जोशी, संवाद प्रकाशन, मेरठ : 100

Academy For Education & Training Pvt. Ltd. ★ Delhi ★

Just Released

परीक्षोपयोगी सीरीज-7

प्रतियोगिता दर्पण

का अतिरिक्तांक

संघ एवं राज्य लोक सेवा आयोग की प्रारम्भिक व मुख्य परीक्षाओं हेतु

समसामयिक घटनाचक्र

नवीन संशोधित एवं परिवर्द्धित संस्करण

{ मई 2022 में प्रकाशित }

करेन्ट अफेयर्स 2022

Vol. 2

राष्ट्रीय | अन्तर्राष्ट्रीय | आर्थिक एवं वाणिज्यिक परिदृश्य

समसामयिक सामान्य ज्ञान | खेलकूद

Code No. 815
₹ 135.00

Code No. 807
₹ 145.00

अन्य विभिन्न प्रतियोगिता परीक्षाओं के लिए भी समान रूप से उपयोगी

समसामयिक वस्तुनिष्ठ प्रश्नोत्तर

Scan the QR Code with your mobile and open the link to see the range of extra issues.

ORPD002S

Download FREE QR Scanner app from the app store

प्रतियोगिता दर्पण 1, स्टेट बैंक कॉलोनी, खन्दारी, आगरा-मथुरा बाईपास, आगरा-282 005
फोन : (0562) 4040735, 2530966 • E-mail : care@pdgroup.in • Website : www.pdgroup.in
• नई दिल्ली 23251844, 43259035 • हैदराबाद 24557283 • पटना 2303340 • हल्द्वानी मो. 07060421008

YH-1971/2022

गांधी साहित्य
के अग्रणी प्रकाशक

आज़ादी का अमृत महोत्सव

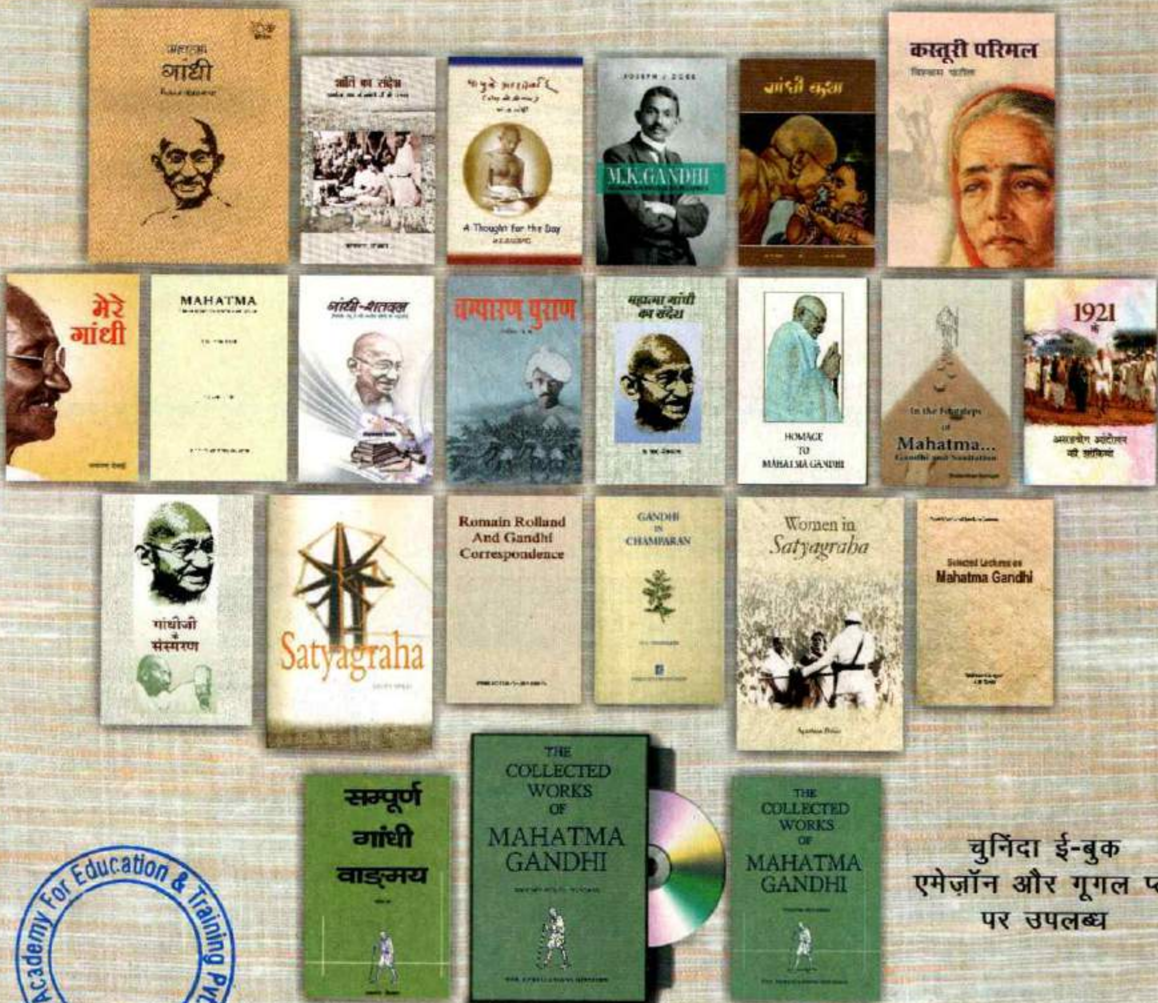

चुनिंदा ई-बुक
एमेज़ॉन और गूगल प्ले
पर उपलब्ध

Elite Academy For Education & Training Pvt. Ltd. ★ Delhi ★

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार

हमारी पुस्तकें ऑनलाइन खरीदने के लिए कृपया www.bharatkosh.gov.in पर जाएं।

ऑर्डर के लिए कृपया संपर्क करें : फोन : 011-24365609, ई-मेल : businesswng@gmail.com

बेवसाइट : www.publicationsdivision.nic.in

/dpd_india @DPD_India /publicationsdivision

गुजराती साहित्य पर गाँधी का प्रभाव

डॉ ध्वनिल पारेख

1857 के विद्रोह को भारत में ब्रिटिश शासन के विरोध की शुरुआत माना जा सकता है। 1857 से 1947 तक के 90 वर्ष भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के काल थे। इस काल और इसकी भावनाओं को अनेक गुजराती लेखकों ने अपनी साहित्यिक कृतियों में समेटा और प्रतिबिंबित किया है। गाँधी के स्वदेश आगमन के बाद साहित्य में स्वतंत्रता की भावना और प्रखर हुई। उनसे प्रभावित लेखकों की रचनाओं में यह भावना अपेक्षाकृत अधिक घनीभूत है।

सुधारक युग में दलपत राम ने 'हुन्नरखाननी चडाइ' (हुन्नर खान का आक्रमण) में स्वतंत्रता की अपनी चाहत को अभिव्यक्त किया। नर्मद ने 'स्वदेश-અભિમાન' (स्वदेश गर्व) शब्द को प्रचलित किया और 'था होम! करीने पडो फतेह छे आगे.' (हुंकार भरके कूद पड़ो आपकी आगे जीत है) के ज़रिये जन सामान्य का उत्साह बढ़ाया। लेकिन पंडित युग (विद्वान युग) इस संदर्भ में कुछ सुस्त और शिक्षा की नयी लहर से काफी हद तक प्रभावित था।

महात्मा गाँधी 1915 में दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटे। उन्होंने 1917 में साबरमती आश्रम और 1920 में गुजरात विद्यापीठ की स्थापना की। इन दोनों संस्थाओं ने गुजरात में स्वतंत्रता आंदोलन की शुरुआत में प्रमुख भूमिका निभायी। उमाशंकर जोशी, सुंदरम, पंडित सुखलालजी, मुनि जिनविजयजी और काका साहेब कालेलकर जैसे अनेक महान विद्वान और लेखक गुजरात विद्यापीठ से जुड़े रहे। इन सबने गुजराती साहित्य में महत्वपूर्ण योगदान किया। इनके अलावा झवेरचंद मेघाणी, कृष्णलाल श्रीधराणी और रमणलाल वी देसाई जैसे साहित्यकारों ने भी अपनी साहित्यिक कृतियों में स्वतंत्रता संग्राम की भावना को प्रतिबिंबित किया।

उमाशंकर जोशी की कविताओं में गाँधी के विचारों और काका साहेब कालेलकर की छाप स्पष्ट दिखायी देती है। उन्होंने अपनी अनेक कविताओं में स्वतंत्रता की तलाश और गुलामी की पीड़ा को प्रदर्शित किया है। वह अपनी कविता 'गुलाम' में पूछते हैं –

"हुं गुलाम?
स्वतंत्र प्रकृति तमाम
सृष्टिबागनुं अमूल फुल
मानवी गुलाम!
- गंगोत्री"

(क्या मैं गुलाम हूँ?
समूची प्रकृति आज़ाद है
प्रकृति का अनमोल पुष्प
मानव है गुलाम!) – गंगोत्री

उमाशंकर जोशी, काका साहेब कालेलकर और सुंदरम जैसे साहित्यकार अपनी औपचारिक शिक्षा छोड़ स्वतंत्रता आंदोलन में कूद पड़े थे। उस दौरान उन्हें जेल भी जाना पड़ा। उमाशंकर जोशी ने विसापुर जेल में अपने एकांकी संग्रह 'सापना भारा' (सांपों का समूह) की रचना की। उन्होंने अपनी कविता 'चुसयेला गोटला' (चुसायला गुठला) में स्वतंत्रता का वृक्ष बनने की कामना व्यक्त की है।

गाँधी युग वास्तव में उमाशंकर जोशी और सुंदरम का समय था। सुंदरम अपनी नाराज़गी को इन पंक्तियों में जाहिर करते हैं –

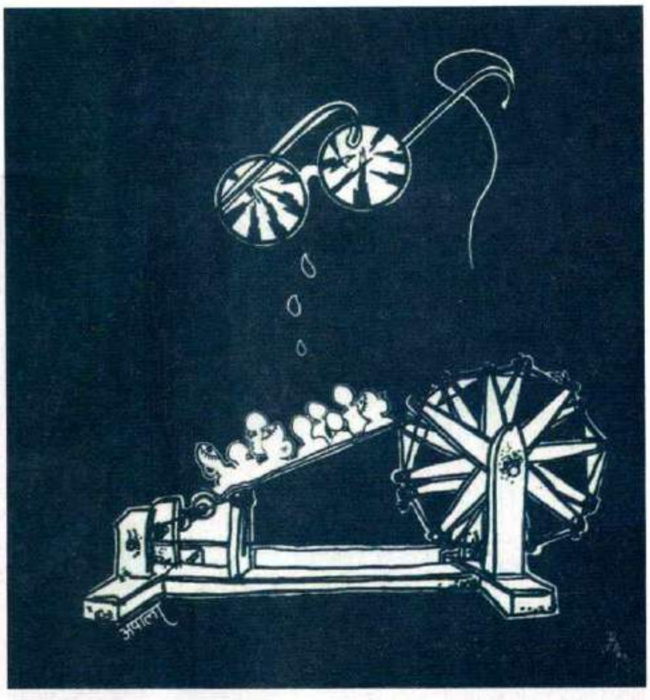

लेखक गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद के गुजराती विभाग में एसोसिएट प्रोफेसर हैं। ईमेल: parekhdhwanil@gmail.com

"ઘણુંક ઘણું ભાંગવું,
તુ ઘણ ઉઠાવ મારી ભૂજા,
ઘણુંક ઘણું તોડવું,
તુ ઘણ ઉઠાવ મારી ભૂજા.
કાવ્ય મંગલા "

(कई चीजें नष्ट की जानी हैं, मेरी भुजाओं, हथौड़े उठाओ कई चीजें ध्वस्त की जानी हैं, मेरी भुजाओं हथौड़े उठाओ। - काव्य मंगला)

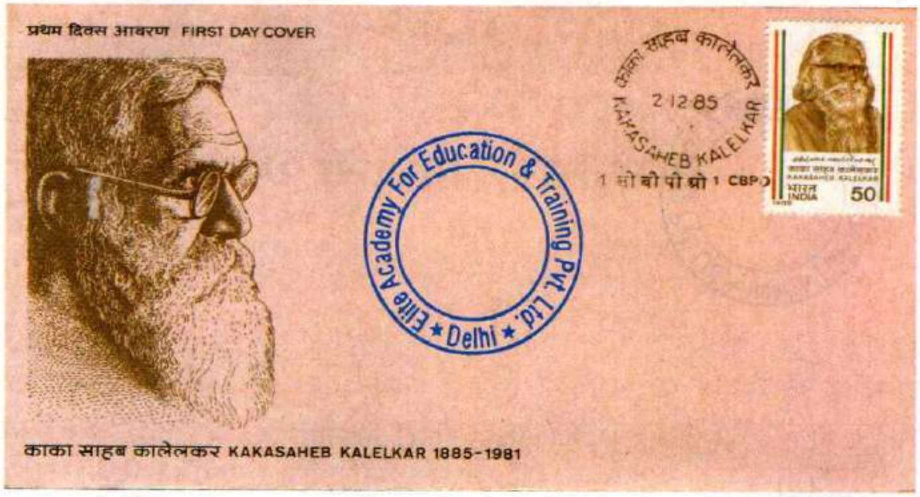

झवेरचंद मेघाणी को गाँधीजी ने राष्ट्रीय कवि का दर्जा दिया था। उनके कविता संग्रह 'સિંધુડો' को ब्रिटिश सरकार ने ज़ब्त कर लिया था। 'સિંધુડો' बेहतरीन गुजराती साहित्य की मिसाल है। इसमें मेघाणी अपनी संवेदनाओं को कुछ इस तरह व्यक्त करते हैं -

"હજારો વર્ષની જૂની અમારી વેદનાઓ
કાલેજાં ચિરતી કંપાવતી અમ ભયકથાઓ"
(हमारी युगों की पीड़ाएँ
हमारी दर्दनाक और विचलित करने वाली परेशानियाँ)

कविताओं के अलावा गुजराती उपन्यासों और नाटकों में भी स्वतंत्रता संग्राम की छाप दिखायी देती है। इस संदर्भ में रमणलाल वी देसाई का उपन्यास 'ભારેલો અગ્નિ' (दबा हुआ आक्रोश) उल्लेखनीय है। यह उपन्यास 1857 के स्वतंत्रता संग्राम की पृष्ठभूमि में लिखा गया है। लेकिन इसका नायक रुद्र दत्त गाँधी के विचारों से प्रभावित दिखायी देता है। उपन्यास का शीर्षक ही ब्रिटिश राज के खिलाफ भारतीयों के आक्रोश को प्रतिबिंबित करता है। गाँधी के विचारों ने भारतीयों के अंदर की आग को प्रज्ज्वलित कर दिया जिसका परिणाम स्वतंत्रता संग्राम के रूप में सामने आया। एक अन्य महत्वपूर्ण उपन्यास जयंति दलाल का 'પાદર ના તીરથ' (गाँव के बाहर तीर्थ) है। यह उपन्यास ब्रिटिश सरकार की मुखालफत पर केंद्रित है। उपन्यास में हिंसा के बावजूद यह सरकार के विरुद्ध जन आंदोलन की सूक्ष्म मिसाल पेश करता है। इसे गुजराती के सबसे

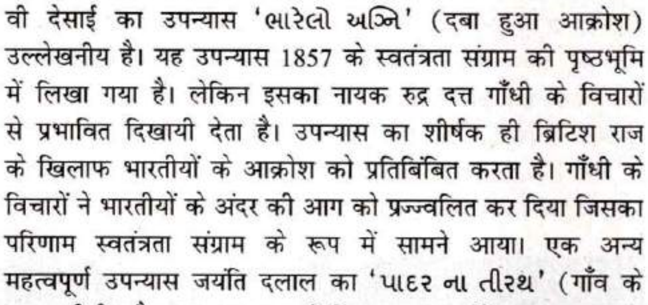

उल्लेखनीय उपन्यासों में से एक माना गया है। मनुभाई पंचोली 'दर्शक' के उपन्यास 'ઝેર તો પીધાં છે જાણી જાણી' के नायक गोपाल में गाँधी की छवि दिखायी देती है। 'दर्शक' ने खुद भी स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय रूप से हिस्सा लिया था। कृष्णलाल श्रीधराणी के 'ઝબક જ્યોત' और सीसी मेहता के 'આગગાડીમાં' (ट्रेन में) नाटकों में ब्रिटिश शासन के जुल्म को दर्शाया गया है। 'આગગાડીમાં' में रेल को ब्रिटिश शोषण के प्रतीक के तौर पर प्रस्तुत किया गया है। जयंत खत्री का नाटक 'મંગલ પાંડે' (मंगल पांडे) 1857 के विद्रोह पर केंद्रित है। मंगल पांडे को नायक के तौर पर पेश करने वाला यह नाटक गुजराती साहित्य के उल्लेखनीय नाटकों में से एक है। यह नाटक मंगल पांडे, नाना साहेब पेशवा और अन्य वीरों की ब्रिटिश शासन के खिलाफ बगावत की रणनीतियों और योजनाओं के इर्दगिर्द केंद्रित है। भारत के स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान ही दुनिया ने दो महायुद्ध देखे। इसी समय गुजरात के आदिवासी समुदाय ने भी ब्रिटिश सरकार का विरोध शुरू कर दिया। आदिवासी विद्रोहों में से एक को मानगढ़ विग्रह के नाम से जाना जाता है। नाटक 'मानगढ़' इस विद्रोह के बारे में ही है।

कृष्णलाल श्रीधराणी का 'આઠમું દિલ્હી' (आठवीं दिल्ली) भी ब्रिटिश सरकार के खिलाफ आंदोलन को चित्रित करता है। कवि सात शासकों से शासित रही आठवीं दिल्ली में आज़ादी की कामना करता है। पन्नालाल पटेल की कहानी 'नेशनल सेविंग्स' में ब्रिटिश शासकों के हाथों ग्रामीणों के आर्थिक शोषण को दिखाया गया है। कहानी का नायक रावजी अन्याय का अनूठे ढंग से विरोध करता है। मनुभाई पंचोली 'दर्शक' ने जलियाँवाला बाग जनसंहार पर एक नाटक लिखा जिसे सरकार ने प्रतिबंधित कर दिया।

कई साहित्यिक कृतियाँ गाँधीजी, सरदार वल्लभभाई पटेल और अन्य स्वतंत्रता सेनानियों के बारे में हैं। लेकिन इन नाटकों में से ज्यादातर किरदार आधारित हैं। गुजराती साहित्य के तीन आरंभिक काल - सुधार युग, पंडित युग और गाँधी युग भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की परम्पराओं को प्रतिध्वनित करते हैं जिसकी झलक विभिन्न साहित्यिक कृतियों में मिलती है। गाँधी के स्वदेश आगमन के बाद साहित्य में स्वतंत्रता की भावना और पुष्पित हुई। गाँधी से प्रभावित लेखकों की रचनाओं में यह अपेक्षाकृत अधिक घनीभूत दिखायी देती है। ■

भारतीय ध्वज संहिता 2002 की मुख्य बातें

भारत का राष्ट्रीय ध्वज देश के लोगों की आकांक्षाओं और उम्मीदों को दर्शाता है। यह हमारे राष्ट्रीय स्वाभिमान का प्रतीक है। राष्ट्रीय ध्वज को लेकर सभी देशवासियों के मन में प्यार और सम्मान है। यह देश के लोगों की भावनाओं से जुड़ा है। भारतीय राष्ट्रीय ध्वज को फहराने और इसके इस्तेमाल के लिए, राष्ट्रीय गौरव का अपमान निवारण अधिनियम, 1971 और भारतीय ध्वज संहिता 2002 में दिशा-निर्देश जारी किए गए हैं। भारतीय ध्वज संहिता को तीन हिस्सों में बाँटा गया है। संहिता के पहले हिस्से में राष्ट्रीय ध्वज के बारे में सामान्य जानकारी दी गई है। दूसरा हिस्से में सरकारी, निजी और शैक्षणिक संस्थानों में राष्ट्रीय झंडे के इस्तेमाल से जुड़े नियमों के बारे में बताया गया है। ध्वज संहिता के तीसरे हिस्से में केंद्र व राज्य सरकारों और उनके संगठनों व एजेंसियों द्वारा राष्ट्रीय झंडे को फहराए जाने से जुड़े नियमों के बारे में जानकारी दी गई है। लोगों को जानकारी मुहैया कराने के मकसद से यहाँ भारतीय ध्वज संहिता 2002 के मुख्य बिंदुओं के बारे में बताया जा रहा है:

हमारे राष्ट्रीय ध्वज तिरंगे के साथ स्वतंत्र भारत का पहला डाक टिकट

- एक आदेश के तहत भारतीय ध्वज संहिता, 2002 में 30 दिसंबर 2021 को संशोधन किया गया और इसके तहत पॉलिएस्टर या मशीन से बने झंडे के इस्तेमाल की भी अनुमति दी गई है। अब राष्ट्रीय ध्वज हाथ या मशीन से बने होंगे और इसका कपड़ा सूती/पॉलिएस्टर ऊन/सिल्क खादी होगा। कोई भी सरकारी, निजी या शैक्षणिक संस्था हर दिन और अलग-अलग अवसरों पर तय दिशा-निर्देशों और सम्मान के साथ कभी भी झंडा फहरा सकती है।
- राष्ट्रीय ध्वज का आकार आयताकार होगा। ध्वज का साइज़ कुछ भी हो सकता है, लेकिन इसकी लम्बाई और ऊँचाई का अनुपात 3:2 होगा। राष्ट्रीय ध्वज में तीन रंगों की पट्टिका होगी और तीनों रंगों वाले पट्टिका की लम्बाई-चौड़ाई बराबर होगी। सबसे ऊपर केसरिया रंग होगा, बीच में सफेद और निचले हिस्से में हरा रंग होगा। सफेद रंग वाली पट्टिका के बीच में नीले रंग में अशोक चक्र होगा। अशोक चक्र में तीलियों की संख्या 24 होगी। ध्वज में अशोक चक्र अच्छी तरह से छपा हुआ होना चाहिए और सफेद रंग वाली पट्टिका के बीच में दोनों तरफ से दिखनी चाहिए।

अगर ध्वज खुले में फहराया जा रहा है, तो यथासंभव इसे सूर्योदय से सूर्यास्त तक रखा जाना चाहिए (अगर मौसम खराब हो तो भी)।

राष्ट्रीय ध्वज को हमेशा सम्मान के साथ फहराया जाना चाहिए और इसके लिए खास जगह का चुनाव किया जाना चाहिए।

अगर ध्वज आधा-अधूरा है और इसमें किसी तरह की गड़बड़ी है, तो इसे नहीं फहराया जाना चाहिए।

राष्ट्रीय ध्वज को एक ही मास्टहेड में किसी अन्य ध्वज के साथ नहीं फहराया जा सकता।

ध्वज संहिता के खंड IX में शामिल पदाधिकारियों, मसलन राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, राज्यपाल आदि की गाड़ी को छोड़कर किसी भी अन्य गाड़ी पर ध्वज नहीं फहराया जाना चाहिए।

राष्ट्रीय ध्वज के अगल-बगल में किसी भी अन्य झंडे को उस ध्वज से ऊपर नहीं रखना चाहिए।

नोट: राष्ट्रीय गौरव का अपमान निवारण अधिनियम, 1971 और भारतीय ध्वज संहिता 2002 के बारे में ज़्यादा जानकारी गृह मंत्रालय की वेबसाइट पर उपलब्ध है।

'हर घर तिरंगा'

हमारा राष्ट्रीय ध्वज पूरे देश के लिए गौरव का प्रतीक है। 'आज़ादी का अमृत महोत्सव' के अवसर पर सरकार ने 'हर घर तिरंगा' कार्यक्रम चलाया है जिसके अंतर्गत सभी देशवासियों को अपने घर पर तिरंगा फहराने के लिए प्रेरित करने की बात है। राष्ट्रीय ध्वज के साथ अब तक हमारा रिश्ता व्यक्तिगत नहीं, बल्कि औपचारिक और संस्थागत रहा है। आज़ादी के 75वें साल में ध्वज को सामूहिक तौर पर घर में लाने से न सिर्फ तिरंगे के साथ निजी जुड़ाव का एहसास होगा, बल्कि राष्ट्र निर्माण के प्रति हमारी प्रतिबद्धता को और मज़बूती मिलेगी। केन्द्र सरकार की इस पहल का मकसद लोगों के दिलों में देशभक्ति की भावना का संचार करना और राष्ट्रीय ध्वज को लेकर जागरुकता फैलाना है।

'हर घर तिरंगा' के बारे में क्यूआरकोड स्कैन करके सीधे वेबसाइट पर जाकर और जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

अब प्रिंट संस्करण और ई-बुक संस्करण उपलब्ध

आज़ादी का अमृत महोत्सव

भारत 2022

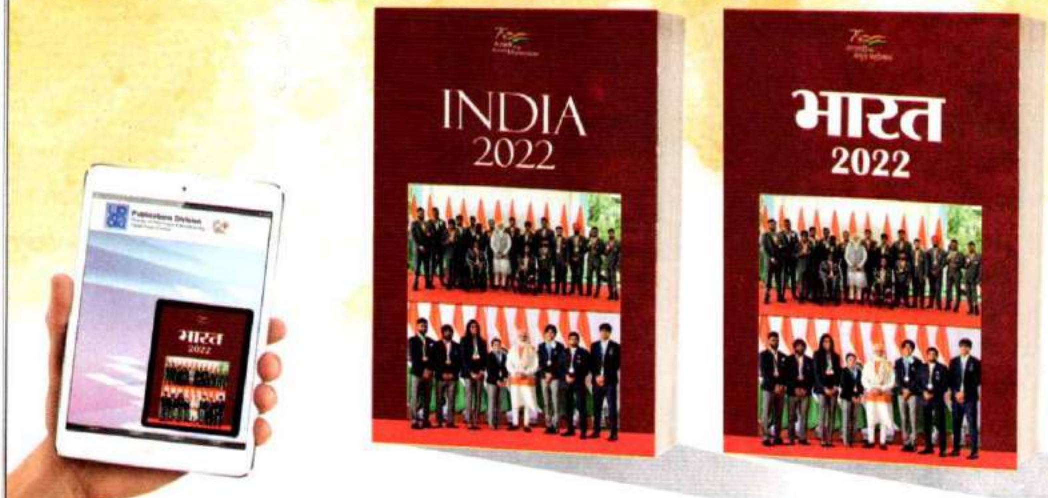

भारत के प्रांतों, केंद्रशासित प्रदेशों,
भारत सरकार के मंत्रालयों और विभागों तथा
नीतियों, कार्यक्रमों और उपलब्धियों की
आधिकारिक जानकारी देने वाला

वार्षिक संदर्भ ग्रंथ

Elite Academy For Education & Training Pvt. Ltd. ★ Delhi ★

मूल्यः प्रिंट संस्करण ₹ 330/- ई-बुक संस्करण ₹ 248/-

पुस्तकें खरीदने के लिए प्रकाशन विभाग की
वेबसाइट : www.publicationsdivision.nic.in और मोबाइल ऐप **Digital DPD** पर जाएं

ई-बुक एमेज़ॉन और गूगल प्ले पर भी उपलब्ध

देश भर में प्रकाशन विभाग के विक्रय केन्द्रों और
पुस्तक विक्रेताओं से भी खरीद सकते हैं

ऑर्डर के लिए संपर्क करें :
फोन : 011-24367260
ई-मेल : **businesswng@gmail.com**
हमारी पुस्तकें ऑनलाइन खरीदने के लिए
कृपया **www.bharatkosh.gov.in** पर जाएं।

प्रकाशन विभाग
सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय,
भारत सरकार
सूचना भवन, सी जी ओ कॉम्पलेक्स,
लोधी रोड नई दिल्ली -110003
वेबसाइट : www.publicationsdivision.nic.in

सूचना भवन की पुस्तक दीर्घा में पधारें

@publicationsdivision @DPD_India @dpd_India

भारत-विभाजन की कहानी

लेखक - रघुवेन्द्र तंवर

मूल्य : 475

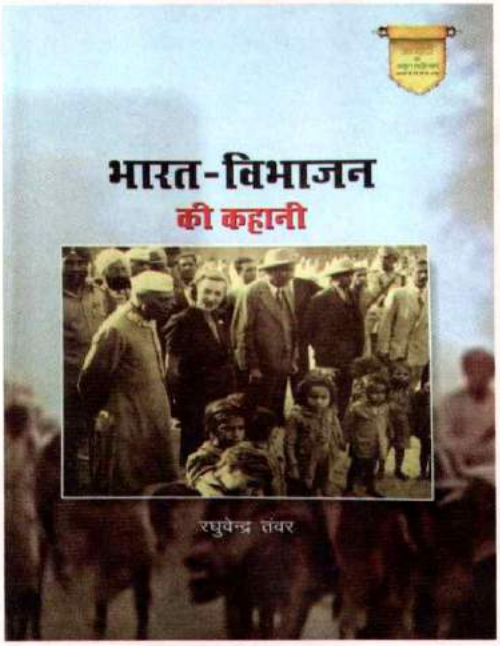

Elite Academy For Education & Training Pvt. Ltd. ★ Delhi ★

भारत का विभाजन अपने सबसे बुनियादी रूप में अभूतपूर्व मानव विस्थापन और मजबूरी में पलायन की कहानी है। यह एक ऐसी कहानी है जिसमें लाखों लोग अजनबी और विपरीत वातावरण में नया आशियाना तलाश रहे थे। विश्वास और धर्म पर आधारित हिंसक बंटवारे की कहानी होने के अलावा यह भी बताती है कि कैसे एक जीवनशैली और वर्षों पुराने सह-अस्तित्व का अचानक और नाटकीय अंत हुआ। आश्चर्य नहीं है कि अधिकांश लोगों, यहाँ तक कि भारत के विभाजन से बेहद कम जुड़ाव वाले लोगों की भी स्मृतियाँ और आम धारणाएँ सामान्यत: मृत्यु और बर्बादी से जुड़ी हैं।

भारत-विभाजन की भयावहता ने विशेषकर पंजाब में, आमजनों, छोटे किसानों, छोटे व्यापारियों, दुकानदारों और पुश्तैनी व्यवसाय में लगे लोगों को बहुत ज्यादा प्रभावित किया। समाज के बहुत बड़े भाग को कुछ पता नहीं था कि क्या हो रहा था और क्यों हो रहा था। अनभिज्ञ, भाग्यवादी और अंधविश्वास से ग्रस्त, उन्हें अपने घरों में शीघ्र ही अवांछित व्यक्ति बना दिया गया था। बड़े पैमाने पर इस आबादी को इधर से उधर किया गया और उसे यह भी नहीं पता कि हासिल क्या होना है।

ब्रिटिश शासन से आज़ादी के परिणामस्वरूप हुआ भारत का विभाजन अभूतपूर्व अराजकता, लाखों परिवारों के मजबूरन पलायन, बर्बर सांप्रदायिक हिंसा, मृत्यु और विनाश की कहानी है। यह पुस्तक अतीत की पुनर्यात्रा और दुर्लभ तस्वीरों, छवियों तथा विस्तृत टिप्पणियों के माध्यम से हमारी स्मृति को ताजा करने का प्रयास करती है। यद्यपि यह इस बात को रेखांकित करती है कि अतीत आँख खोलने वाला हो सकता है, यह आगे बढ़ने के संकल्प पर भी ज़ोर देती है। भारत की स्वतंत्रता के 75वें वर्ष में प्रकाशित यह पुस्तक सामान्य पाठकों के साथ ही विषय विशेषज्ञों की रुचि की भी होगी।

प्रकाशन विभाग की आज़ादी के अमृत महोत्सव श्रृंखला की इस पुस्तक में संग्रहीत 240 तस्वीरें, दृष्टांत और समाचार-पत्रों के रिपोर्टों की प्रतियों आदि का सतर्कतापूर्वक चयन किया गया है। स्पष्ट परिप्रेक्ष्य में रखने के लिए यह अध्ययन विस्तृत व्याख्यात्मक टिप्पणियां और उपाख्यान प्रदान करता है। प्रस्तुत पुस्तक यह समझाने की कोशिश नहीं करती कि ऐसा क्यों हुआ, बल्कि वास्तव में यह कैसे हुआ, इसके विषय के रूप में लाखों परिवारों को प्रभावित करने वाली छवियाँ और दृश्य हैं। एक तरह से यह दृश्यों और तस्वीरों के ज़रिए स्मृति पर ज़ोर देना तथा अतीत की पुनर्यात्रा है।

इस पुस्तक को इस तरह डिजाइन किया गया है कि यह सामान्य पाठक के साथ विषय विशेषज्ञों की रुचि की भी हो। सबसे बढ़कर यह स्पष्ट, निष्पक्ष और विश्वसनीय स्रोतों पर आधारित है। पुस्तक के लेखक रघुवेन्द्र तंवर, एक प्रतिष्ठित इतिहासकार, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के एमराईटस प्रोफेसर हैं। स्नातकोत्तर स्तर पर (इतिहास) दो स्वर्ण पदकों के साथ उनका शानदार अकादमिक रिकॉर्ड है। उनके प्रमुख प्रकाशनों में शामिल हैं- रिपोर्टिंग द पार्टीशन ऑफ पंजाब : प्रेस पब्लिक एंड अदर ओपिनिअंस 1947; बी क्लियर कश्मीर विल वोट फॉर इंडिया: जम्मू एंड कश्मीर 1947-1953; द पॉलिटिक्स ऑफ शेयरिंग पावर: द पंजाब यूनियनिस्ट पार्टी 1923-1947. ■

यह पुस्तक तथा आज़ादी के अमृत महोत्सव श्रृंखला की अन्य पुस्तकों के लिए प्रकाशन विभाग की वेबसाइट www.publicationsdivision.nic.in पर लॉग इन करें।

हमारी पत्रिकाएँ

योजना | YOJANA | কুরুক্ষেত্র | Kurukshetra | रोज़गार समाचार | Employment News | आजकल | बाल भारती

योजना
विकास को समर्पित मासिक
(हिंदी, अंग्रेज़ी व 10 अन्य भारतीय भाषाओं में)

प्रकाशन विभाग
सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय
भारत सरकार

कुरुक्षेत्र
ग्रामीण विकास पर मासिक
(हिंदी और अँग्रेज़ी)

आजकल
साहित्य एवं संस्कृति का मासिक
(हिंदी तथा उर्दू)

रोज़गार समाचार
साप्ताहिक
(हिंदी, अँग्रेज़ी तथा उर्दू)

बाल भारती
बच्चों की मासिक पत्रिका
(हिंदी)

Elite Academy For Education & Training Pvt. Ltd. ★ Delhi ★

घर पर हमारी पत्रिकाएँ मंगाना है काफी आसान...

आपको सिर्फ नीचे दिए गए 'भारत कोश' के लिंक पर जा कर पत्रिका के लिए ऑनलाइन डिजिटल भुगतान करना है–
https://bharatkosh.gov.in/Product/Product

सदस्यता दरें

प्लान	योजना या कुरुक्षेत्र या आजकल (सभी भाषा)	बाल भारती	रोज़गार समाचार	
वर्ष	रजिस्टर्ड डाक	रजिस्टर्ड डाक	मुद्रित प्रति (साधारण डाक)	ई-संस्करण
1	₹ 434	₹ 364	₹ 530	₹ 400
2	₹ 838	₹ 708	₹ 1000	₹ 750
3	₹ 1222	₹ 1032	₹ 1400	₹ 1050

सदस्यता शुल्क में रजिस्टर्ड डाक का शुल्क भी शामिल है। कोविड-19 महामारी के मद्देनज़र **नए ग्राहकों को अब रोज़गार समाचार के अलावा सभी पत्रिकाएं केवल रजिस्टर्ड डाक से ही भेजी जाएंगी।** पुराने ग्राहकों के लिए मौजूदा व्यवस्था बनी रहेगी।

ऑनलाइन के अलावा आप डाक द्वारा डिमांड ड्राफ्ट, भारतीय पोस्टल आर्डर या मनीआर्डर से भी प्लान के अनुसार निर्धारित राशि भेज सकते हैं। डिमांड ड्राफ्ट, भारतीय पोस्टल ऑडर या मनीआर्डर '**अपर महानिदेशक, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय**' के पक्ष में **नई दिल्ली** में देय होना चाहिए।

रोज़गार समाचार की 6 माह की सदस्यता का प्लान भी उपलब्ध है, प्रिंट संस्करण रु. 265/-, ई-संस्करण रु. 200/-, कृपया ऑनलान भुगतान के लिए https://eneversion.nic.in/membership/login लिंक पर जाएं। डिमांड ड्राफ्ट 'Employment News' के पक्ष में **नई दिल्ली में देय होना चाहिए।**

अपने डीडी, पोस्टल आर्डर या मनीआर्डर के साथ नीचे दिया गया 'सदस्यता कूपन' या उसकी फोटो कॉपी में सभी विवरण भरकर हमें भेजे। भेजने का पता है-
संपादक, पत्रिका एकांश, प्रकाशन विभाग, कक्ष सं. 779, सूचना भवन, सीजीओ कॉम्प्लेक्स, लोधी रोड, नई दिल्ली-110003.
अधिक जानकारी के लिए ईमेल करें- pdjucir@gmail.com
हमसे संपर्क करें- **फोन: 011-24367453,** (सोमवार से शुक्रवार सभी कार्य दिवस पर प्रात: साढ़े नौ बजे से शाम छह बजे तक)

कृपया नोट करें कि पत्रिका भेजने में, सदस्यता शुल्क प्राप्त होने के बाद कम से कम आठ सप्ताह लगते हैं, कृपया इतने समय प्रतीक्षा करें और पत्रिका न मिलने की शिकायत इस अवधि के बाद करें।

सदस्यता कूपन (नई सदस्यता/नवीकरण/पते में परिवर्तन)

कृपया मुझे 1/2/3 वर्ष के प्लान के तहत .... पत्रिका .... भाषा में भेजें।

नाम (साफ व बड़े अक्षरों में) ....

पता : ....

.... ज़िला .... पिन ....

ईमेल .... मोबाइल नं. ....

डीडी/पीओ/एमओ सं. .... दिनांक .... सदस्यता सं. ....

1857

एक ख़्याल था... इन्क़लाब का इक जज़्बा था
सन अठारह सौ सत्तावन!!
एक घुटन थी, दर्द था वो, अंगारा था, जो फूटा था
डेढ़ सौ साल हुए हैं उसकी
चुन चुन कर चिंगारियाँ हमने रोशनी की है
कितनी बार और कितनी जगह बीजी हैं वो चिंगारियाँ हमने,
और उगाए हैं पौधे उस रोशनी के!!
हिंसा और अहिंसा से
कितने सारे जले अलाव
कानपुर, झाँसी, लखनऊ, मेरठ, रुड़की, पटना।
आज़ादी की पहली पहली जंग ने तेवर दिखलाए थे
पहली पहली जंग ने तेवर दिखलाए थे
पहली बार लगा था कोई सांझा दर्द है बहता है
हाथ नहीं मिलते पर कोई उंगली पकड़े रहता है
पहली बार लगा था ख़ूं खौले तो रूह भी खौलती है
भूरे जिस्म की मिट्टी में इस देश की मिट्टी बोलती है

पहली बार हुआ था ऐसा...
गांव गांव रूखी रोटियाँ बंटती थीं
ठंडे तन्दूर भड़क उठते थे!
चंद उड़ती हुई चिंगारियों से
सूरज का थाल बजा था जब,
वो इन्क़लाब का पहला गजर था!!
गर्म वह चलती थी जब
और बिया के घोंसलों जैसी
पेड़ों पर लाशें झूलती थीं
बहुत दिनों तक महरौली में आग धुएं में लिपटी रूहें
दिल्ली का रस्ता पूछती थीं।

उस बार मगर कुछ ऐसा हुआ...
क्रांति का अश्व तो निकला था
पर थामने वाला कोई न था

जांबाज़ों के लश्कर पहुंचे मगर
संभालने वाला कोई न था

कुछ यूं भी हुआ...
मसनद से उठते देर लगी
और कोई न आया पांव की जूती सीधी करे
देखते-देखते शामे-अवध भी राख हुई।
चालाक था रहज़न, रहबर को
इस 'कूंऐ यार' से दूर कहीं बर्मा में जाकर बांध दिया।
अब तक वो जलावतनी में है
काश कोई वो मिट्टी लाकर अपने वतन में दफ़न करे।
आज़ाद है अब...
अब तो वतन आज़ाद है अपना
अब तो सब कुछ अपना है
इस देश की सारी नदियों का अब सारा पानी मेरा है
लेकिन प्यास नहीं बुझती

ना जाने मुझे क्यूं लगता है
आकाश मेरा भर जाता है जब
कोई मेघ चुरा ले जाता है
हर बार उगता हूँ सूरज
खेतों को ग्रहण लग जाता है

अब तो वतन आज़ाद है मेरा...
चिंगारियाँ दो... चिंगारियाँ दो...
मैं फिर से बीज उगाऊं धूप के पौधे
रोशनी छिड़कूं जाकर अपने लोगों पर
मिल के फिर आवाज़ लगाएं...

इन्क़लाब
इन्क़लाब
इन्क़लाब!!

Gulzar
गुलज़ार

Elite Academy For Education & Training Pvt. Ltd. ★ Delhi ★

(योजना के अगस्त 2007 अंक में प्रकाशित)